प्रतिश्रुत पीढ़ी

आवरण जीवन अडालजा
मुद्रण शिक्षा भारती प्रेस बीकानेर
मूल्य आठ रुपये
प्रथम संस्करण फरवरी १९६८

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर

प्रतिश्रुत पीढ़ी

आठ प्रतिश्रुत कवियों की चुनी हुई सौ कविताएं

मृत्युन्जय उपाध्याय
निरंजन महावर
श्याम सुंदर घोष
कुमारेंद्र पारसनाथसिंह
जुगमन्दिर तायल
अजित पुष्कल
राजीव सकसेना
रणजीत

संपादक

रणजीत

नवयुग ग्रन्थ कुटीर

यह नहीं कि मैं अपने परिवेश की असगतियो के प्रति अन्धा हूँ
या कि मैं उसकी विरूपताओ को देखना नहीं चाहता
नहीं, मैं उन्हे देखता हूँ
पर मैं सिर्फ उन्हे ही नही देखता
और न उनके गौरव-गायन मे ही
अपनी कविताओ को लगाना चाहता हूँ
मैं उन विरूपताओ की लपटो के बीच
प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौन्दर्य को भी देखता हूँ
और उस सगति को भी
जो इन असगतियो की काई फाड कर झाक जाती है।
मैं अपने चारो ओर फैली हुई सक्रान्ति से नहीं,
उसके बीच से अपने नक्श उभारती हुई क्रान्ति से प्रतिश्रुत हूँ।
अस्तित्व की बेहूदगियो के रेगिस्तान का नहीं,
उसके नीचे बहती हुई सार्थकता की उस अन्त सलिला का कवि हूँ
जो पाताल-तोड कुए के रूप मे फूट पडना चाहती है।
मैं उसकी मुक्ति के लिये सकल्पित हूँ।

प्रतिश्रुत पीढ़ी : एक संदर्भ बोध

पिछले पन्द्रह वर्षों से हिन्दी की समसामयिक कविता को मोटे तौर पर 'नयी कविता' कहा जाता रहा है। पर उसे शिल्पगत नवीनता की दृष्टि से भले ही यह एक नाम दिया जा सकता हो, वस्तु और अॅप्रोच की दृष्टि से वह एक तरह की कविता नहीं है। ऐसी स्थिति मे सिर्फ शिल्पगत नवीनता के आधार पर इस कविता को 'नयी कविता' कह कर अनेक विरोधी प्रवृत्तियों की कविता धाराओं को एक ही भानुमती के कुनबे में रखने से कोई लाभ नहीं। बल्कि उसे सही परिप्रेक्ष्य में समझने में बाधा ही पड़ती है।

बाद

तो जिसे 'नयी कविता' कहा जाता है, वह कम से कम चार तरह की कविता है। एक वह है जो पहले की प्रगतिशील कविता का नया, उदार और व्यापक रूप है। इसे नयी प्रगतिशील कविता कहा जा सकता है। दूसरी वह, जिसने बच्चन, अंचल आदि छायावादोत्तर स्वच्छंदतावादियों की रूमानी परम्परा को नया रूप दिया है। इसे हम नयी रूमानी कविता कह सकते हैं। यद्यपि गीत की विधा को साधारणतया 'नयी कविता' के घेरे से बाहर ही रक्खा जाता है, तथापि जिसे आजकल 'नवगीत' कहा जाने लगा है, उसकी अधिकांश अभिव्यक्तियां इसी कविता के अंतर्गत आएंगी। धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, आदि कई नये कवियों और गीतकारों की बहुत सी रचनाएं इसी धारा के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। रूमानी कविता का एक थोड़ा अलग रूप हमें उस कविता में मिलता है, जिसे श्री वीरेन्द्र कुमार जैन 'सनातन सूर्योदयी' कविता कहते हैं। इस कविता पर एक ओर तो पंत और नरेन्द्र शर्मा के परवर्ती काव्य की तरह अरविन्दवाद का प्रभाव है और दूसरी ओर कुछ प्रगतिशील प्रभाव भी। कुल मिलाकर नयी रूमानी कविता ने छायावाद से चली आती हुई रूमानी काव्य परम्परा को बच्चन की सरलता और अंचल की मांसलता से आगे ले जाकर मानवीय सौंदर्य और प्रेम के नये नये आयामों के उद्घाटन का प्रयत्न किया है।

इन दोनों प्रकार की कविताओं को यदि कोई एक ही विशेषण देना हो तो इन्हें स्वस्थ कविता कहा जा सकता है। क्योंकि अपनी अलग-अलग रुझानों के बावजूद, ये धाराएं अधिकतर जीवन के धनात्मक और स्वस्थ पक्ष पर जोर देती हैं।

तीसरी [कविता] वह है जिसे इन दोनों की तुलना में 'बीमार कविता' कहा जा सकता है। यह वह कविता है जो कुंठा, निराशा, पराजय, पतन, मृत्यु, हत्या, आत्महत्या और विक्षेप की अस्वस्थ भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं तथा जीवन और जगत के असंगत, विद्रूप,

वीभत्स और कुत्सित हृदयो और बिम्बो से मिल कर बनती है। इस कविता के प्रतिनिधि उदाहरण हमे श्रीका त वर्मा, कलाश वाजपयी, मुद्रा राक्षस, राजकमल चौधरी और दूधनाथ सिंह जसे कवियों की कविताओ मे मिलते हैं। इस धारा मे वे सभी समसामयिक कवि आ जाते हैं, जो अपने आपको 'पिटे हुए' 'भूखे' 'सक्रा त' या 'अ यथावादी' कहते हैं। अमेरिका की बीट पीढी और बगला की भूखी पीढी इनकी प्रेरणा के स्रोत हैं। ये वे कवि हैं जि हे जीवन और जगत का कोई दृश्य अपने वास्तविक रग मे नहीं दिखाई देता। कदम कदम पर इनके शब्दो और बिम्बों मे मौत के सत्रास और विक्षेप को दुग ध आती है। हर कविता इ ह 'और भी अधिक नगा' कर जाती। कविता इन लोगो के लिए सृजन नहीं उत्सजन है वह आड है जिसमे बठ कर ये लोग अपने मन की गदगी और दिमाग का विक्षेप निकालते हैं। आकाश के तारे इ ह फुसियों की तरह दिखाई देते हैं और किसी की याद इ हे इस तरह आती है जसे कोई बच्चा खौलते हुए जल में छूट कर गिर जाय'। मुहब्बत इ हे 'गिरे हुए गभ के बच्चे' सी और चाहत 'किसी मरीज के खास कर भी न थूक सकने की मजबूरी' सी लगती है।

इस बीमार कविता के भी दो प्रमुख 'आयाम' हैं एक वह जिसमें मृत्यु-बोध और उसके सत्रास को अभिव्यक्ति मिली है, जिसमे रोग, पीप और मवाद के बिम्ब अधिक हैं और दूसरा वह किसमे यौन कुठाए और विकृतिया एक ऐसे वीभत्स और कुत्सित रूप में अभिव्यक्ति हुई हैं, कि उसके सामने वह सब साहित्य जो साधारणतया अश्लील कहा जाता है, पवित्र और मूल्यवान लगने लगता है। 'नये कवि' की जगह इन 'कविताओं' के रचयिताओं को 'नग कवि' कहा जाय तो शायद वस्तु स्थिति की अधिक सही अभिव्यक्ति होगी। यह कविता शब्द के पूरे अथ मे 'कुत्सित कविता' है।

यहां एक बात स्पष्ट कर लेनी चाहिए। बीमार कविता के इन कवियो की भी कुछ कविताओं को, जिनके बिम्ब यद्यपि रुग्ण और निराश मन के बिम्ब हैं, तथापि जो अपने परिवेश की विद्रूपता और वीभत्सता का

भी

उद्घाटन और उस पर प्रहार करती हैं, 'बीमार कविता' की संज्ञा से अलग करना होगा। इसी प्रकार वीभत्स और विद्रूप बिम्ब कई स्वस्थ दृष्टिकोण के कवियों की प्रभावशाली कविताओं में भी मिलते हैं। इसलिए किसी कविता को बीमार कविता बनाने वाली मूल बात केवल रुग्ण बिम्ब विधान नहीं, उस विधान के पीछे कवि की दृष्टि, उस विधान का उद्देश्य है। केवल सतह की अस्वस्थता के कारण किसी कविता को 'बीमार कविता' की संज्ञा देना अनुचित होगा।

'नयी कविता' का चौथा रूप वह है जिसे छन्दमुक्त कविता की तुक में 'अर्थमुक्त कविता' कहा जा सकता है। यह ऐसी 'कविता' है जिसे स्वस्थ या बीमार कहने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह कविता ही नहीं है। दाद देनी पड़ेगी इसके कुछ साहसी संदेशवाहकों को कि वे स्वयं अब इसे 'अकविता' कहने लगे हैं (यद्यपि अपने आपको 'अकवि' कहने वाले सभी लोग हमेशा अकविता ही लिखते हों सो बात नहीं, वक्त जरूरत वे अच्छी खासी कविताएं भी लिख लेते हैं)। मैं इसे उलजलूल कविता कहना पसन्द करता हूँ। यह वह 'कविता' है जो शब्दों का सार्थक प्रयोग नहीं करती, उनसे खेलती है। या फिर उनको ईंट पत्थरों की तरह अपने पाठकों के सिर पर दे मारती है। वस्तुहीन शिल्प ही इसके लिए सब कुछ है इसलिए इसे शिल्पवादी भी कहा जा सकता है। इस शिल्पवादी अकविता के कुछ 'अच्छे' उदाहरण शमशेर की कई कविताओं में मिल जाते हैं। 'नकेन के प्रपद्य' इस धारा के कुछ प्रतिनिधि उदाहरणों का 'सुन्दर' संकलन है। पुराने प्रयोगवादियों में प्रभाकर माचवे और लक्ष्मीकान्त वर्मा में यह प्रवृत्ति काफी प्रबल है। एकदम समसामयिक सृजन में विकृत-रुचि लोगों का एक पूरा समूह 'अकविता' का अभ्यास कर रहा है। पर इस अकविता के सर्वश्रेष्ठ कवि वे हैं जो अपनी अर्थहीनता के बावजूद साधारण पाठकों को आतंकित कर सकने में सफल होते हैं वे जिनकी 'कविताएं' पढ़ते हुए पाठक को लगता है कि इनमें कोई ऐसा अर्थ है जो उसकी साधारण बुद्धि की पकड़ में नहीं आ रहा है। और वह उस 'गहरे अर्थ' से आतंकित और एक झूठी आत्म

हीनता की भावना से आक्रांत होकर, अपनी हार मान लेता है।

'नयी कविता' का तीसरा और चौथा वर्ग—बीमार कविता और अकविता—कई बार एक दूसरे के काफी नजदीक आ जाते हैं। वास्तव में ये दोनो धाराएं चालीसो की उस काव्यधारा की ही नयी परिणतियां हैं जिसे प्रयोगवाद कहा गया था। एक मे उसकी अहं-केंद्रीयता, कुंठा पराजय-वाद का नया 'विकास' हुआ है और दूसरी मे उसकी शिल्पवादिता का, उसकी 'चौंकान-वृत्ति' का।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'आधुनिकता' और 'नयेपन' पर एकाधिकार का दावा भी सबसे ज्यादा जोर-शोर से इन्हीं दोनो धाराओ के कवि और उनके समर्थक कर रहे हैं।

और इनकी यह आधुनिकता है क्या ?

मोटे तौर पर जिसे ये लोग 'आधुनिक भावबोध' कहते हैं उसके कुछ प्रमुख आयाम हैं विरूपता मे रूप देखना, निरर्थक अमूर्तता मे रस लेना, जीवन की हर महत्वपूर्ण और पवित्र चीज को कीचड में लथेड़ना और हर ओछी और क्षुद्र चीज को गौरवान्वित करना, स्वस्थ, स्वच्छ, सार्थक और जीवित की जगह बीमार, बीभत्स, अर्थहीन, मृत और मर-णोन्मुख मे सौंदर्य देखना, सबको एक दूसरे के लिए अजनबी समझना हर समय मृत्यु के आतंक से त्रस्त रहना, और अपने सिवा अन्य सभी लोगो के अस्तित्व को सहने का अभिशाप भोगना, या ऐसा सब होने का अभिनय करना। अभिनय करने की बात मैं इसलिये कह रहा हू कि अगर 'आधुनिक भाव-बोध' के ये सब चिह्न वास्तव मे किसी व्यक्ति मे हों, तो उसे मानसिक चिकित्सालय के सिवा कहीं भी नहीं भेजना चाहिए और चूंकि हमारे अधिकांश 'आधुनिकतावादियों' को वहा रखने की जरूरत महसूस नहीं की जाती (हा कुछ को कभी कभी अवश्य होती है), इसलिए यही कहना होगा कि आधुनिक भाव-बोध के अधिकांश आयाम उन्होंने ओढ़े हुए हैं—पश्चिमी पत्र-पत्रिकाएं पढ़ पढ़ कर 'अर्जित' किये हैं।

मलार्मे ने एक जगह लिखा है "अपाहिजत्व की देवी, ओ आधुनिक कल्पने ! तुझे मैं अपने जीवन की ये थोडी सी पक्तियां समर्पित करता हूँ, जो तेरी कृपा के उन क्षणों मे लिखी गयी हैं, जब तूने मेरे भीतर ससार के प्रति नफरत और नितान्त 'न कुछ' के प्रति बजर प्रेम का स्फुरण नहीं किया। लेकिन हमारे इन 'आधुनिकतावादियो' की ट्रैजेडी यह है कि वे मलार्मे की तरह उन क्षणो मे नहीं लिखते जब अपाहिजत्व की यह देवी कृपा कर के अपना साया उन पर से हटा लेती है, बल्कि उन क्षणों में ही लिखते हैं जब वह उनके दिलो मे ससार के प्रति नफरत और 'न-कुछ' के प्रति एक बजर प्रेम का स्फुरण कर देती है।

लेविस ने, जो स्वय एक आधुनिकतावादी कवि और आलोचक के रूप मे प्रसिद्ध है आधुनिक समाज मे ऐसे कवियों की स्थिति को बडी बिम्बात्मक शब्दावली मे व्यक्त किया है "वह आधुनिक दुनिया मे केवल उस देहाती मूर्ख की तरह ही जीवित रह सकता है जिसे उपेक्षा पूर्वक सहन कर लिया जाता है और जो अपने दिमाग मे चक्कर काटते हुए टूटे फूटे बिम्बों को लिये, अपने आपसे बडबडाता हुआ, सराय और पट्रोल पम्प के आस पास भटकता हुआ, एक ऐसे जीवन की नकलें उतारता रहता है, जिसमे उसका स्वय का कोई हिस्सा नही है।" आधुनिकता के नाम पर समसामयिक कला मे आए हुए ऐसे रुग्णतावादी आदोलनो को पूरी पश्चिमी सस्कृति के अध पतन का ही एक प्रमाण सिद्ध करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री ओस्वाल्ड स्पेंगलर ने भी इन आधुनिकतावादी कलाकारो को 'उद्यमी बेगलीबाज' (इडस्ट्रियस काब्लस) और 'शोर करने वाले मूर्ख' कहा।

और इस अपाहिज आधुनिकता की परिणति क्या होती है ? या तो लोग मलार्मे को तरह लिखना ही छोड देते हैं। या अपने वास्तविक या ओढ़े हुए विक्षेप का वमन अपग बिम्बों और अर्थहीन शब्दों मे करते रहते हैं और या फिर इस बेमतलब बेहूदगी से ऊब कर ईलियट, ओडॅन और मर्जेय की तरह पीछे हट कर कथोलिक धर्म और 'असाध्य वीणा' की शरण से लेते हैं। और उनका सारा 'उद्धत विद्रोह' मध्यकालीनता के चरणों पर समर्पित हो जाता है।

शरद

इसी स्थिति को देखते हुए राजीव सक्सेना को यह बात समझ में आती है कि साहित्य मे वास्तविक आधुनिकता अभी अपने जन्म की प्रतीक्षा मे है, कि 'आधुनिक जीवन के प्रति घृणा' (मै कहना चाहूंगा एक अजर घृणा) पर आधारित आधुनिक कला वास्तव मे आधुनिकता का छायाभास मात्र है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहीं कहा है कि वास्तविक' आधुनिकता की तीन आधारभूत धारणाएं हैं इहलौकिकता, ऐतिहासिक चेतना और वैयक्तिक मुक्ति की जगह सामूहिक मुक्ति की धारणा। प्राचीनता और मध्यकालीनता इस लोक को कम महत्व देती थीं, ससार को एक विकास की परम्परा मे से गुजरते हुए नहीं, कभी एक ह्रास-परपरा मे से गुजरते हुए और कभी एक नियत वृत्त मे चक्कर लगाते हुए कल्पित करती थीं और सामाजिक सुख और स्वाधीनता की जगह वैयक्तिक मोक्ष या निर्वाण को अधिक महत्व देती थीं। बात काफी पते की है। निश्चय ही,ये तीन तत्व वास्तविक आधुनिकता के मूलाधार हैं। मै ऐतिहासिक चेतना के साथ एक बात और जोडना चाहता हूं—वैज्ञानिक दृष्टि। यद्यपि ऐतिहासिक चेतना भी वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिणाम है, पर वैज्ञानिक दृष्टि ऐतिहासिक चेतना या प्रगति की धारणा तक ही सीमित नहीं है। उस के और भी कई आयाम हैं जसे यथार्थवादिता। इसी तरह इहलौकिता के साथ भी एक और बात जोडी जा सकती है। युग सम्पृक्ति। अपने युग को झेलना। उसके बिना इहलौकिकता पगु है। और 'सामूहिक मुक्ति की धारणा' की जगह मै कहना चाहूँगा व्यक्तित्व का सम्मान करने वाली सामाजिकता। इस तरह आधुनिकता के मूलभूत तत्व हुए इहलौकिकता और युग-सम्पृक्ति,वैज्ञानिक दृष्टि और ऐतिहासिक चेतना तथा व्यक्तित्व का सम्मान करने वाली सामाजिकता। मेरे खयाल से यही एक कसौटी है, जिस पर असली और नकली आधुनिकता को पहिचाना जा सकता है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो 'नयी कविता' की इन च र धाराओं

मे सबसे महत्वपूर्ण और वास्तव मे आधुनिक कविता है नयी प्रगतिशील कविता। यद्यपि यह 'नयी कविता' का वह जीवन्त अंश है जिसके कारण सब बाह्य विरोधों और अपनी सब आंतरिक दुर्बलताओं के बावजूद न केवल नयी कविता अस्तित्व मे रही, बल्कि दृढ़तापूर्वक स्थापित भी हुई है, तथापि इस धारा के कवियों को दुहरी उपेक्षा का सामना करना पड़ता रहा है। एक ओर तो प्रगतिवादी आलोचकों ने कभी कभार उनकी स्वस्थता को स्वीकृति देकर भी उन पर अधिक ध्यान इसलिए नही दिया कि वे 'नयी कविता' के अंतर्गत आते थे और दूसरी ओर प्रयोगवादी और तथाकथित 'नये' आलोचकों ने उनकी स्वस्थता और सामाजिकता के कारण ही उनकी उपेक्षा की। यही कारण है कि समसामयिक हिंदी कविता की इस सर्वाधिक जीवंत प्रवृत्ति का सम्यक विवेचन और मूल्यांकन नही हो सका।

'नयी प्रगतिशील कविता' मोटे तौर पर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे पुराने प्रगतिशील कवियों की परवर्ती प्रगतिशील कविताओं के अतिरिक्त नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर, भारत भूषण अग्रवाल वीरेन्द्र कुमार जैन, दुष्यन्त कुमार और केदारनाथसिंह जैसे कवियों और वीरेन्द्र मिश्र जैसे गीतकारों की उन कविताओं का सज्ञा है जो एक ओर तो नये सौन्दर्य बोध और शिल्प चेतना के कारण 'नयी' है, और दूसरी ओर दृष्टि की स्वस्थता, और स्वभाव की सामाजिकता-मानवीयता के कारण 'प्रगतिशील।'

इस तरह से सोचा जाय तो जिस 'तार सप्तक' से प्रयोगवाद का, और जिस दूसरे सप्तक से 'नयी कविता' का आरम्भ माना जाता है, उन दोनों सकलनों के कवियों मे से लगभग दस नयी प्रगतिशील कविता के ही कवि थे, यह अलग बात है कि इनमे से कई सप्तकों से बाहर कवि रूप में जिन्दा नहीं रहे (और क्या वे उनमे भी जिन्दा थे ?) और कई बाद मे अध्यात्मवादी या शिल्पवादी (जैसे नरेश मेहता और शमशेर) हो गये। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि जिन सप्तकों के दो तिहाई कवियों ने

अपने वक्तव्यो मे अपने आपको मार्क्सवादी तक घोषित किया, उन्हें केवल सम्पादक की भूमिकाओ के कारण प्रयोगवादी कविता के सकलन मान लिया गया। वास्तव मे ये दोनो सकलन मोटे तौर पर नयी प्रगतिशील कविता के ही प्रारंभिक सकलन थे। आज भी नवयुवक कवियो की एक पूरी की पूरी पीढ़ी इस काव्यधारा को समृद्धि मे अपना योग दे रही है। 'आज की कविता', 'युयुत्सावाद', 'प्रतिश्रुत कविता' आदि समसामयिक काव्यान्दोलनो के पीछे भी उसी सामाजिक चेतना का पुनराग्वेषण परिलक्षित होता है।

अब सवाल उठता है कि नयी प्रगतिशील कविता की ऐसी कौन सी विशेषताएं हैं जो एक ओर तो उसे पुरानी प्रगतिशील कविता से और दूसरी ओर शेष 'नयी कविता' से अलग करती हैं ?

नयी प्रगतिशील कविता पुरानी प्रगतिशील कविता का ही नया विकास है, इसलिए उसमे उस कविता के मूल तत्व विद्यमान हैं। इस कविता के पीछे भी वैज्ञानिक मानववादी जीवन दर्शन है। पर एक तो यह पुरानी प्रगतिशील कविता की तरह कविता को सिद्धान्त कथन का माध्यम मात्र नहीं मानती और दूसरे यह मानववाद को किसी रूढ अपरिवर्तनशील सिद्धान्त के रूप मे नहीं, सोचने और समझने की एक वैज्ञानिक दृष्टि के रूप मे स्वीकार करती है। यही कारण है कि नयी प्रगतिशील कविता का काम साम्यवादी देशो की सरकारों या अपने देश के साम्यवादी दलो की तत्कालीन नीतियों का तार्कीकरण या काव्यानुवाद नहीं है। उसकी प्रतिश्रुति मनुष्यता और जनता के प्रति है स्वस्थ, सामाजिक और प्रगतिशील मानव मूल्यो के प्रति है। किसी दल विशेष के प्रति नहीं। वह साम्यवाद मे निहित मानववाद को रेखाङ्कित करती है और इसलिए अन्य क्षेत्रों के मानववादी तत्वो को भी वह स्वीकृति और सम्मान देती है। लेकिन उसने प्रगतिशील कविता की क्रान्तिकारी परम्परा को छोड़ा नहीं है, वह आज भी अन्याय और अत्याचार के खिलाफ उसी आक्रोश के साथ लड़ती है, शोषण और विषमता के विरुद्ध उसी कटुता के साथ सघर्ष-रत है।

यद्यपि नयी प्रगतिशील कविता भी अपने मूल रूप मे सामाजिक कविता है तथापि उसकी सामाजिकता सपाट, सूत्रात्मक और यांत्रिक सामाजिकता नहीं है, बाहर से थोपी हुई सामाजिकता नहीं है। वह एक जटिल और जीवन्त सामाजिकता है। यही कारण है कि उसमे व्यक्तित्व के हनन को नहीं, उसके उचित और स्वस्थ विकास की स्थापना है। नरेश मेहता की एक कविता—अनुनय—से मैं अपनी बात की पुष्टि करूंगा

यहा वहां लोग ही लोग हैं
मै कहा हू ?
तुम्हारे परो के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो मेरे लिये वह मूल्य है !

'लोग' अर्थात् भीड: अविवेकपूर्ण, आक्रमक सामाजिकता। 'नाम' यानी व्यक्तित्व, जो कि कवि के लिए महत्वपूर्ण है। पर इस का मतलब यह नहीं कि वह सामाजिकता को व्यक्तित्व की शत्रु के रूप में ही कल्पित करता है। नहीं। उसे लोगों की देहो से दुगन्ध नहीं आती। वह अपने नाम के अतिरिक्त परिश्रम की गध को भी मूल्यवान समझता है। यह समाजद्रोही व्यक्तिवादी नहीं, व्यक्तित्व की रक्षा चाहने वाला समाजवादी है

आओ
हम सब अपने अपने नाम खोज निकालें
भीडो की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने क लिए
कि कब हम लोग होते हैं
और कब नहीं।

पर नयी प्रगतिशील कविता का यह व्यक्ति शेष नयी कविता के व्यक्ति की तरह नदी का द्वीप नहीं है

हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी क

वरन् जीवन से भरे निमल सरोवर

भले मिट्टी से हुआ निर्माण

किंतु मिट्टी है परिधि ही

नहीं है मिट्टी हमारे प्राण '

इसीलिए वह धारा से अलग रहने को अपनी नियति नहीं मानता

समवाय के अभियान मे मिल

एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण ।

स्वस्थ सामाजिकता के साथ ही साथ स्वस्थ व्यक्तित्व को भी महत्व देने के कारण ही यह कविता व्यक्ति की समस्या्ओं और उसके सुख दु.ख की अभिव्यक्ति से कतराती नहीं है । व्यक्ति और समाज के बीच का द्वन्द्व भी (जो विषम साजिक परिस्थितियों या व्यक्ति की अनुचित महत्वाकांक्षाओ का ही परिणाम है) उसी तरह इसका विषय है, जिस तरह समष्टि के सामने व्यष्टि का समपरण ।

एक और दृष्टि से भी नई प्रगतिशील कविता पहले की प्रगतिशील कविता से अलग है । पहले की प्रगतिशील कविता मे उत्साह, उद्‌बोधन और आक्रोश की ही अधिकता थी, या फिर यथाथ चित्रण की । पर नयी प्रगतिशील कविता मे एक ओर तो इनके अतिरिक्त एक अ तमथन का कसाव और तनाव भी मिलता है। सरल दुविधाहीनता और वैचारिक अक्खड़पन की जगह उसमे एक जटिल सकोच, एक अधिक अनुभवी विनम्रता है । वह यदि सलीब थामे हुए धमयोद्धाओं की शहादतों को वाणी देती है तो उनके दद को भी अभिव्यक्ति देती है, जो शहीद तो हो रहे हैं पर जिनके पास कोई सलीब नहीं है । उथले और यांत्रिक आशावाद की जगह कभी कभी इसमे एक गहरी और मानवीय निराशा भी मिलती है, पर यह निराशा तथाकथित 'नयी कविता' की अस्थाटीनता और पराजय मे अलग है, क्योकि वह एक मानवीय सस्पश से पवित्र होती है । और दूसरी ओर इसने यथार्थ के रूपायन को भी नये और ऊंचे स्तरों तक पहुँचाया है यथार्थ के नये आयाम खोले हैं । मुक्तिबोध और गिरिजाकुमार माथुर की उपलब्धियां इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । गिरिजा

कुमार माथुर ने जहा सामाजिक यथार्थ की नयी जमीने जोती हैं, मुक्ति बोध ने वहा मानसिक यथार्थ के गहन अन्धकार लोक मे साहसपूर्वक प्रवेश किया है। आधुनिक जीवन के नये वैज्ञानिक उपकरणो और नयी जीवन स्थितियो को नयी प्रगतिशील कविता ने *काव्यानुभूति का विषय बनाया है* और उन्हे कलात्मक अभिव्यक्ति दी है।

प्रगतिशील कविता के प्रारम्भकाल मे पन्त ने लिखा था

तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार
वाणी मेरी क्या तुम्हे चाहिए अलकार ?

और एक युग तक यह प्रगतिशील कविता का आदर्श बना रहा पर नयी प्रगतिशील कविता वाणी की सार्थकता विचारो को वहन करने मात्र में नहीं मानती। वह कविता को मन मस्तिष्क को छूने की क्षमता की भी, 'कविता के अपने जादू' की भी कायल है। शिल्प के प्रति वह उपेक्षा का व्यवहार नहीं करती। एक शब्द मे वह शिल्प चेतन है। पर उसकी शिल्प चेतना शिल्पवादी कविता की शिल्प चेतना से बिल्कुल अलग है, जो शिल्प को ही साध्य बना देती है। नयी प्रगतिशील कविता नये नये शिल्प-रूपों का आविष्कार करती है पुराने शिल्प रूपो मे नये प्रयोग करती है, कविता के कवितापन को महत्व देती है, पर उसे अपने आप मे एक साध्य नहीं मानती। कविता उसकी दृष्टि मे अन्तत समाज को उचित दिशा मे बदलने का, मानवमन के सम्यक रूपायन और शिल्पन का ही एक प्रयास है, शब्दो या बिम्बो का खिलवाड नहीं। वह नये प्रयोग करती है पर सिर्फ नवीनता या प्रयोग के लिए नहीं। यही कारण है कि वह प्रयोग करके भी प्रयोगवादी नहीं है, नयी होकर भी नवीनतावादी नहीं है, शिल्प-सजग हो कर भी शिल्पवादी नहीं है।

इसी नयी प्रगतिशील कविता की एक अगली कडी के रूप मे प्रस्तुत हैं प्रतिश्रुत पीढ़ी की ये कविताए।

प्रतिश्रुत पीढ़ी हिन्दी कविता के उन नये हस्ताक्षरों की पीढ़ी है, जो आज भी, जब कि अप्रतिश्रुति, उत्तरदायित्व हीनता और अकविता का

फदान जोरों परहे, न केवल कविता को कविता बनाये रखना चाहते हैं, बल्कि जो स्वस्थ मानववादी आदर्शों से प्रतिश्रुत भी हैं।

इस पीढ़ी के सिर्फ आठ ही कवियो की कविताए इस सग्रह में सकलित हैं। सिर्फ' शब्द का प्रयोग मै इसलिए कर रहा हू कि इस भ्रम की गुंजाइश न रहे कि मात्र ये आठ कवि ही इस पीढ़ी के प्रतिनिधि हैं या कि इनकी कविताओ के सिवा और किसी की कविताए प्रतिश्रुत नहीं हैं। जसा कि मैं पहले कह चुका हू नवयुवक कवियों का एक पूरा समूह इस तरह की कविता लिख रहा हे और हमारा प्रयत्न रहेगा कि उनमे से कई और कवियों को इस प्रकार के भावी सकलनो मे सम्मिलित किया जा सके।

स्पष्ट ही है कि इन कवियो को एक ही सकलन मे मात्र इनकी शिल्प सवेदनागत नवीनता के आधार पर ही सयोजित नहीं। किया गया है। अपनी सवेदनशीलता और शिल्प-चेतना मे एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न होते हुए भी इन कविताओ को एक ही जगह सकलित किया गया है, तो वह इसीलिए कि विस्तार मे बहुत से मतभेदो के बावजूद जीवन और कविता के प्रति इनकी दृष्टि मोटे तौर पर एक ही है। वे भविष्य मे भी प्रतिश्रुत हो बने रहगे, ऐसी गारटी कोई नहीं दे सकता।

सकलित कवियो मे से कुछ का विचार था कि प्रत्येक कवि की कविताए सपरिचय और सवक्तव्य छपें तथा सपादकीय के रूपम प्रतिश्रुत कविता का घोषणापत्र हो। पर दोनो बातें मुझे नहीं रुचीं। क्योंकि मेरे खयाल से कवि का परिचय अगर कविताए नहीं दे सकतीं तो सपादक क्या देगा, और कवि का दृष्टिकोण अगर कविताओ मे व्यक्त नहीं होता तो वक्तव्यो मे उसकी घोषणा व्यर्थ है। इसीलिए मैंने सिर्फ समसामयिक कविता पर अपने कुछ विचार सक्षेप मे लिपिबद्ध कर दिये कि प्रतिश्रुत कविता को सही सदभ मे देखा जा सके, उसकी विशेषताओ या 'आयामों' की खोज का काम सुधी पाठकों और समीक्षकों के लिए छोड कर मै बीच से हट रहा हूँ।

—रणजीत



अनुक्रम

श्यामसुन्दर घोष

कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह

जुगमन्दिर तायल

अजित पुष्कल

राजीव सक्सेना

रर

मृत्युञ्जय उपाध्याय



व्यवस्था

रात
पेट पर रख हाथ
गिन रहा तारे
यह यशस्वी देश

सम्मुख खड़ी दर्पण के
व्यवस्था
बेशरम
सुलझा रही है केश ।

मैं भी

घना जंगल   रास्ता दुर्गम   मशालें जल रही हैं

अँधेरा चीरते
सधे पांवों,
मुट्ठियाँ ताने,

बढ़ रहे लाखों-करोड़ों लोग
लम्बा युद्ध लड़ने को।

मैं भी
कलम का एक छोटा सा सिपाही
चल रहा हूं साथ
दे रहा हूं दस्तकें—हर द्वार पर

खून जो सोया हुआ
उसको जगाने को।

बेटा मेरा

पिता ने
पहाड़ों को काटा,
जगल साफ़ किये
खेत जोते
मिलों का धुआँ पिया
मर गये

तिलमिलाया
मैं,
उतर आया आँखों में खून
उठायी कलम
लिखे
कुछ गीत कुछ कवितायें

सीना फुला
कहता है बेटा मेरा
"बाबू जी सीखी है मैंने बदूक
आप भी सीखेंगे ?"

मानवता

उतप्त उजाड़ ऊँचा
रेतीला टीला
बबूल की निपट नंगी सूखी टहनियों पर
हाँफते
सफेद
सफेद
कबूतर

सहमा छाती से चिपका
दुधमुँहा शिशु
उजड़ी आंख उलझे बाल
अधनंगी औरत
आकाश में मँडराते—
गिद्ध
बस गिद्ध

चीख
और फिर—
होठों पर
लोरी
घर घर

शांति-वार्ता

पाँच चालीस पर—

मेज है अणुबम है चाय के प्याले हैं
राजनीतिज्ञ हैं बहुत सी फाइलें हैं
सड़क है संवाददाता हैं फोटोग्राफर है
लोग हैं विकसी हुई आँखें हैं

पाँच उनसठ पर—

न राजनीतिज्ञ हैं न फाइलें हैं
न संवाददाता है न फोटोग्राफर है
मेज है अणुबम है टूटे हुए प्याले हैं
सड़क है लोग हैं बुझी हुई आँखें हैं।

नौकरी

इब्राहिम की दुकान से बीड़ी ख़रीदी नही
शिवपुजना के हाथ की गर्म चाय पी नही
उड़िया की दुकान का घुंडी पान खाया नही
शीशे मे सूरत देख तनिक मुस्काया नही
बगल से गुजरती नछमनिया को देखा नही
चटकल की धनो को बिरहा सुनाया नही
हसन की बिटिया को गोद म उठाया नही
उदास खड़े महगू को हँस के बुलाया नही
ढिबरी जलायी नहा, चूल्हा सुलगाया नही
छूट गयी नौकरी, किसी को बताया नही

पापड़ सूख रहे हैं

बादलों पर आँखें टिकाय
उदास बैठी है,
मेरी पड़ोसिन है ।

दिन भर पापड़ बेलती है
बरामदे में लेटे बीमार बूढ़े से झगड़ती है
कोख को कोसती है
बहू को गालियाँ देती है
सपने देखती है
आधी रात गये—

आसमान साफ है
सूरज चमक रहा है
पापड़ सूख रहे है ।

कौन ?

सिंदूर पर हजारों का नाम
होठ पर अठन्नी की चमक
गर्भ मे अज्ञात पिता का अंश
फेफड़ो मे टी वी की गमक

—एक रुपया
—नही, दो रुपया

कौन ?

सीता ?

सावित्री ?

युग-स्थिति

अंधों की धरती
बहरों का आकाश
दोनों के बीच
गूंगों की लाश ।

अरी ओ ज़िन्दगी

पसीना
प्यास
छाले

पकड़ रहे हाथ
अरी ओ ज़िंदगी ।

तेरे जूड़े में
गुलाब टाँकूंगा ।

बहुत दिन हुए

सपने जोड़ते,
उगलियों पर दिन गिनते
घुटनो पर हाथ धर
हवाओ के स्वर सुनते
धुएँ मे घुटते
इशारो से बोलते

बहुत दिन हुए दोस्तो।
बहुत दिन हुए

मानो तो कहू

तोड़ो यह चुप्पी
छोड़ो यह ढील
अब तो पथ मोड़ो
बहुत दिन हुए
दोस्तो।
बहुत दिन हुए

नदी याद की

हँसी हुई
पलट कर देखा
तुम नही
थी
नदी
याद की

घाटिया से
उत्र की
बहती हुई

तुम

क्लास की बेंच पर
खुदे दो नाम
पास
बहुत पास

पढ़कर
कुछ ने कही कहानी
कुछ को सूझा परिहास

चुप थी
सिर्फ एक तुम
यादों में डूबी
उदास
बहुत उदास

क्षमा-निवेदन

छू गई बाँह ?
घूर घूर मत देखो
अधा नही हू
दर'सल अकेले चलना नही आता ।

आदत
लोगो को हँसते देख
हँसने की
रोते देख
रोने की

माफ करना
गलती हुई
हँस पड़ा, तुम्हे भी हँसते देख ।

दुख गया तुम्हारा मन
सुनकर मेरी बात ?

माफ करना
फिर गलती हुई—
जो चाहता हू मैं
वह कहना नही आता ।

गीत

देखना नऽ सूरज
बीनना नऽ गेहू
फूल सी आंखे कुम्हलायेगी
जाती है, जा
दुबली हो मत आना ।

कूटना नऽ धान
पीसना नऽ जौ
दूब सी बाहे पियरायगी
जाती है जा
सावन मे आ जाना ।

लीपना नऽ आगन
मांजना नऽ बासन
चाँद सी हथेली करियायेगी;
जाती है जा,
गोदी मे चदा ले आना
जऽ

निरंजन महावर

अजनबी

अपनी अपनी जगह पर
सब जम गये हैं।
—पहाड़ नदियाँ गाँव
ग्लेशियर हवा मोड़
रास्ते और चौरस्ते
यह समूचा आसमान
और इस पर तैरते तारे
सब थम गये है।
आँखो मे थमे हुए दृश्यो में—
वह मैं हू
जो टूटकर सितारे सा ररकता हू।

समुन्दर ठहर गये है
उट्ठे हुये तूफान
ठहर गये हैं
जहां प्रात है
वहां प्रात ठहर गयी है
जहां सध्याए है
वहां सध्याए ठहर गयी है
ठहरे हुए इस गहन तम में
यह मैं हूं
जो विजली सा कौंध जाता हू।

केंचुली मे गर्भ मे

बहुत चाहता हू—पूर्ण होते दिन को
समय की नदी में सिरा दूं
और हर नये दिन को नये पुष्प सा
आंगन बीच खिलते देखूं
किन्तु ज्यो ही सूरज डूब जाता है
मन ऊब जाता है।

तारीख बदलते समय
मेरी अंगुलियां सुन्न हो जाती हैं
और मन केंचुली मे लिपटे हुये सांप सा
छटपटाता है।
सागर के वक्षस्थल पर
दौड़ लगाती हुई लहरो को बनते-बिगड़ते देखकर
लगने लगता है कि
जीवन कितना निस्सीम और निस्संग है।

बहुत चाहता हू
धरती पर दूब सा रच जाऊं
और जमाने का संपूर्ण दुःख
मुझ पर ओस बनकर बिछ जाय
ताकि भविष्य के चरणो को
शीतल और सुखद जमीन मिले।

कि यह आकाश मुझमे समा जाए
और बादलो के नर्म-नर्म टुकड़े
मेरे जलते हुए नेत्रो को नम कर दे।
हवा आये और मुझे
पीपल की नयी बिल्कुल नयी कोपल
सा हिला दे।
कही तो कोई सरसराहट हो, जो
यह दु ख कम कर दे।

मैं आकाश मे ऊँचा-ऊँचा उड़ कर
उसे अपने कोमल पखो से छू लेना चाहता हूँ
पर वह और भी दूर चला जाता है
और तब मैं उस सुख से अनुभूत नही हो पाता।

मैं बादलो को पकड़कर
अस्पतालो तक ले जाना चाहता हूँ
कि करुणा उन्हे द्रवित करदे
फूलो को
बच्चो के पीले-पीले चेहरो मे घोल देना चाहता हूँ
बहारो को सड़को पर
मांड दूँ तो कितना अच्छा लगने लगेगा
यह शहर।

मैं पुष्प की तरह खिलना चाहता हूँ
लेकिन धूप परस नही देती
मैं इन्द्रधनुष सा रच जाना चाहता हूँ

सरक जाता है।
लहरा की तरह दौड़ना चाहता हूँ तो
सागर वाष्प बनकर उड़ने लगता है।

बहुत चाहता हूँ कि खुलकर हँसूँ और हँसी को
उदास चांदनी रातों मे हरसों के देतो सा रोल दूँ।
लेकिन मैं इन सब से वंचित रह जाता हू।
यू तो अब भी बहुत कुछ
बकाया है। अब भी मैं भीड़ मे घिरा हूँ
पर भीड़ कोई धूप तो ह नही कि खिल जाउगा।

असपृक्त रह जाता हू
खिल नही पाता हूँ
तब मेरा मन
गर्भ मे पूर्ण विकसित शिशु की भांति
छटपटाता है
उफ। इस धरती को कितनी पीडा होती होगी।
यह मुझे ज म क्यो नही दे देती?
इस तरह कोख मे कब तक ढोयेगी?
काश यह भीड़ भी कोई सूर्य होती।

मेरे और अन्य लोगों के बीच

यह नही कि आकाश अब
उतना नीला नही रहा
यह भी नही कि
फूल अब उतने चटख नही होते।
हवा अब भी प्रवहमान है,
और धूप मे अब भी उष्णता है।

इस पृथ्वी से पृथक
मेरी कोई पृथ्वी नही है,
न ही इस समाज से पृथक कोई समाज।
न कोई अलग लोक है न कही अलग दुनिया।
न तो मेरा कोई भिन्न इकाई है
और न ही कोई अस्तित्व।
फिर भी एक विचार बार-बार
मुझमे कौंधता है—
कि कुछ है जो मुझे इन सब स्थितियों से अलग करता है।

विवेक जो अब भी मेरे साथ है
मुझे सोचने पर विवश करता है—
कि मेरे और अन्य सब लोगों के बीच का स्थान
एक बहुत बड़ा शून्य बनकर रह गया है
और एक पृथक एवं सत्ताहीन इकाई के रूप में

जीने के लिए मैं विवश कर दिया गया हू ।

इस शू य के उस पार
मैं अब भी
मकानो को, सड़को को
और अनेकानेक भागती हुई आकृतियो की भीड़ को
देख रहा हूँ ।
उनकी आवाज मेरे कानो तक पहुचते-पहुचते
हल्ला बन जाती है
और उनका प्रत्येक आचरण
हवा को मथती हुई विभि न आकृतिया के समूह की दौड़ ।
लगता है
ये आकृतिया मेरी परिचित हैं
और इस हल्ले मे घुले हुए शब्दो के अर्थ
कभी मैं समझता था ।

न जाने
कितना समय व्यतीत हो चुका है इस बीच ?
यह भीड़ अब
घिस-घिस कर कितनी धुँधली हो चुकी है ।
लोग महज चाबी भरी हुई स्प्रिंगदार आकृतिया का
समूह मालूम होते हैं ।

इस हल्ले के किस शब्द को
मैंने मा के मुख से लोरी मे सुना था ?
और किस शब्द को
उच्चरित करते मेरी प्रेमिका के मुख पर
अमित आभा आ गई थी ? मुझे कुछ भी याद नही ।

मेरी परछाईं तक
मुझे अपरिचित लगती है ।
लगता है मेरी स्मरणशक्ति लुप्त होती जा रही है ।
मैं तथाकथित मानवीय कार्य-कलापों
और कुत्ते, बन्दर और गिद्धों के
कार्य-कलापों के फ़र्क को भी भूल चुका हूं ।
क्या इनमें पहले
कोई मूलभूत फ़र्क रहा है ?

ओह ! मुझे कुछ भी तो याद नहीं आता ।

टिक टिक टिक की यह ध्वनि
घड़ी की है
या मेरी धड़कनें हैं ?
कमरे में गूंजती हुई आवाज़ को
पहचानने का प्रयत्न करने पर
आश्चर्य होता है कि वह मेरी अपनी ही आवाज़ है
कभी-कभी मुझे लगता है
कि मैं आकाश में धंसा हुआ एक पर्वत शिखर हूं
और इस अन्तराल में
न जाने बर्फ़ की कितनी परतें
मुझ पर जम गई हैं ।
न जाने मैंने इस स्थिति में
कितना समय काट दिया है ।
निर्लिप्त होने के सतत प्रयत्न में आंखें मूंद
न जाने मैं युग द्वारा कितना भोगा और जिया जा चुका हूं ।

माथे पर किसी हथेली का स्पर्श अनुभव कर
जब बंद नेत्र खुल जाते हैं
तो देखता हू कि वह
मेरी ही हथेली है खुरदरी और उष्णताहीन।

धूप मेरी आंखो मे भर जाती है
जमी हुई बर्फ पिघलने लगती है
और मुट्ठिया खोलते ही
आकाश मेघाच्छादित हो जाता है।
हल्की-हल्की फुहार मे
इन्द्रधनुष बनते है और मिट जाते ह
उस समय वहा मेरे सिवाय और कोई नही होता।

धूप के पात्र

उषा काल के साथ मेरी
यात्रा आरम्भ होती है
और मैं धूप के पावों
का पीछा करता
एक निरन्तर पथ पर आगे-आगे
बढ़ता हो जाता हूं।

अविरल गति से बढ़ते जाते हैं
धूप के पांव
विश्राम-हीन पथ होता जाता है प्रशस्त—
नगर-नगर, गाँव गाँव।

यह अनन्त पथ
जिस पर संध्या एक विराम की तरह
आती है और हर विराम
एक नया आरम्भ बनकर अग्रसर होता है।

इस दुर्गम पथ पर
मैं अपने प्रियजनों, अपने सह-यात्रियों को
सूत्रबद्ध करने के प्रयत्न में
बिखर-बिखर जाता हूं।

उनके सधे हुए हाथों की अगिनत पताकाएं
वायुमंडल में चिनगारियों की तरह तैर रही हैं।

संजोया-सभाना न गया
तो अराजकता रौंदकर उन्हें
राख कर देगी।
इसके पूर्व कि सूर्य अंधकारमय हो जाये
नक्षत्रों में विस्फोट हो
और ग्रह अपने पथ से
विचलित होकर आपस में टकराने लगें
मैं अग्नि का एक सैलाब बन जाना चाहता हूँ।
नावों के पाल खोल
हम नये-नये द्वीपों की खोज में
चल पड़े। समुद्रों को तूफान की तरह रौंदते,
क्षितिजों को काट-छाँट कर
समुद्र की अतल गहराइयों में फसते
नये भूखण्डों में प्रकाश के बीज बोने निकल पड़े।

हमारे वेग से टकराकर सीमान्त
पागल हो उठे
अंधकार के आवरण को हमने
तेज धार वाले चाकुओं से चीर दिया,
जालों की तरह
साफ होता गया अंधकार।
नये भूखण्डों ने हमें
अपनी बांहों में समेट लिया।

हमने अपने पंखों की शक्ति को आंका—
हौसले बुलन्द थे। अभेद्य आकाश
को चीर कर हम ब्रह्माण्ड में पहुँच गये।

सूर्य की तरह प्रकाशित नक्षत्र और
पृथ्वी की तरह अपनी अपनी दिशा पर परिचालित ग्रह
हमारे आगमन की
प्रतीक्षा मे धैर्यहीन हो रहे थे। ✓

[२]

इस पथ पर
शाति स्थापनार्थ अनेक लडाइया
लडी जा रही है
रक्त-रजित टूटी तलवारे चारो ओर
बिखरी पडी है
असख्य असख्य बदूके
लाशो के ढेरो पर बेतरतीब पडी है।
नष्ट हुई सभ्यताए
भयावह निर्जन ढूह बन गई है।
पराजित निहत्थे लोगो को सलाखो से
पीट-पीट कर दास बनाया जा रहा है।
और यह पथ निर्जीव लौहपट की तरह
पडा सब सह रहा है।

मै चलता ही जाता हू इस
निर्जीव पथ पर कि
कही किसी क्षितिज पर शुभ का आरभ होगा
और नारकीय यातना की अभेद्य चट्टानें
विस्फोट मे उड़ जाएगी।
मार्ग की अनेक काली अभेद्य चट्टानों को काटकर
हमने सुरंगें निकाल
अपने से विदा होते होते प्रकाश को पुन पकड़ लिया है।

हमारी आदिम चेतना ने
गुहाओ से इसलिए प्रस्थान नही किया था
कि वह चलकर पुन गुहाओ मे भटक जाय,
हमारा अस्तित्व सकट मे पड़कर
अराजकता को जन्म दे
पड़ौसियो द्वारा ही पड़ौसियो का वध हो
अपनी उद्दाम वासना की नारकीय खाइयो मे गिरकर
हम निरस्त्र हो
सड़को पर
उन्मादित पशुओं की भांति विचरण करें
रक्तभेद-वर्णभेद मे उलझकर
बच्चो को नेजो पर उछाल द।
मानव मात्र भीड़ बनकर रह जाय और
हर नगर
ईंट-चूना-सीमेंट और चिमनियो का
एक लौदा लगने लगे।
हमारा आदि-पूर्वज जब प्रथम बार
अपने मेरुदण्ड पर तनकर खड़ा हो गया था
और हम गुहाओ से निकल आये थे—
हमारे नेत्र प्रकाश मे चौधिया गये थे
वही से प्रारम्भ होता है यह पथ
ओह इस यात्रा के आदिम छोर पर
समय का मुख इतना रुग्ण नही लगता।

[३]

इस महायात्रा मे
अनेक राजमार्ग पथ और पगबाट

आ-आ कर समाहित होते जाते है और यह पथ
विकसित और विस्तृत होता जाता है ।

पथ के किनारे-किनारे
अनेक शिविर गड़े हुए हं, जिन पर
पताकाए फहरा रही हे ।
पताकाए ।
रगविरगी पताकाए । मोटे मोटे हरफो मे
जिन पर नाम लिखे हुए है ।
(या) प्रतीकात्मक सकेत बने हुए है ।
इनमे से
वहुत सी पताकाए कटने लगी है ।
वहुत सो पताकाए फटने लगी है
और बहुतो के रग
उडने लगे हैं
और वहुतो पर लिक्खे हुए नाम
मिटने लगे हैं ।

चलते-चलते मैं
कई वार थकावट महसूस करता हू ।
मेरे सहयात्री भी थक जाते हैं ।
थके हुए लोग
इन शिविरो की ओर भागते हैं
उनमें घुस जाते हैं और
पताकाए फाड़ देते हैं ।
लिखे हुए नामो पर
कीचड़ उछालते हैं, कालिख पोत देते हैं
और अपने नामो को
नयी-नयी पताकाए गाड़ देते हैं ।

मैं थका-मांदा, ललचाये नेत्रों से
इन शिविरों की ओर देखता हूं
और किसी शिविर में
सर छिपाना चाहता हूं ।

तभी सूर्य में विस्फोट होते हैं,
पृथ्वी मेरा आधार, मेरी जड़ें
डोलने लगती हैं
हवा में प्रश्न उछलते हैं,
दिशाओं से आवाज़ आती है—
ये खेमे तेरे नहीं हैं
ये मंजिलें तेरी नहीं हैं
ये उपलब्धियाँ तेरी नहीं हैं ।

तब मैं सड़क किनारे
किसी वृक्ष तले
थकान झाड़ता हूं,
रातें काटता हूं, और बढ़ जाता हूं—
अपने सहयात्रियों को टटोलता, उन्हें सूत्रबद्ध करता ।

मैं बढ़ता ही जाता हूं
मुट्ठियों में एक संकल्प दबाए,
हृदय में ऐतिहासिक पीड़ा की अग्नि संजोये,
कि जब तक शेष है शक्ति—
चलता ही जाऊंगा । बढ़ता ही जाऊंगा
और जहां थककर गिर जाऊंगा
और लहूलुहान हो संज्ञाहीन हो जायेंगे मेरे पैर,
हाथों की अंगुलियां गल-गल कर गिर जाएंगी

और जब मुझसे आगे कतई नही बढ़ा जायेगा
तब मैं
पेट के बल कुहनियां टेक-टेक रेंगूगा,
दांत और नाखूनो को धरती मे
गाड-गाड घिस दूगा, और
अंतिम श्वास के साथ वही कही बिखर जाऊगा।
मेरी यात्रा म पथ है, चौराहे है,
विश्राम के लिए पडाव है, किन्तु मंजिलें कही नही।

इतिहास ने मुझे दृष्टि दी है
धूप के पांवो से लिपटी हुई
सभ्यता और संस्कृतियो के संग में
विकसित हुआ हू, खिला हू, जिया हू,
और इस अंधकार के उस पार
भविष्य के गर्भ मे छिपे हुए
प्रकाश को मेरे नेत्र
आतुरता से अगोर रहे हैं।

आता हूं मैं

तुम्हारे सुसज्जित नगर के
वायुमंडल में आज
जयघोष तैर रहे हैं
स्वागत द्वारों मे जुलूस बढ़ रहा है
चप्पलें चटकाता इस रेले के पीछे-पीछे
आता हू मैं।

मेरे लिए
कहीं भी नेत्र नहीं चमकते
स्वागत के लिए कहीं कोई हाथ नहीं उठाता
कहीं परिचय की मुस्कान तक नहीं
अपनी पतलून की जेबों मे सुरक्षित
अतीत का खोटा सिक्का टटोलता,
टूटी चप्पलें चटखाता
फिर भी आता हू मैं।

आकाश में तैरता
सांवला बादल एक जिन्दा लाश
जिसके लिए किसी को न खुशी है
न किसी को कोफ्त।

फिर भी इस नगर की धूप में
एक छाया की तरह मैं

बैठ गया हूँ।
जितनी नीरवता है इस चाँदनी में।
जयघोष, नारों और उत्सवों में
रागी मन की धड़कनों को
कानों पर टाँग कर महसूस कर रहा हूँ।

तुम्हारे [illegible] में और बाहर
अब भी व्याप्त हूँ मैं।
उदासी तुम्हारे चेहरे-आँगन पर छा जाती है
उस रात धरती का समस्त ऐश्वर्य भी
तुम्हें मेरी छाया से नहीं उबार पाता।

तुम्हारे सपनों में मैं
एक फेंके हुए पत्थर की तरह आ गिरता हूँ
और झनाक्कर काँच के टुकड़े
फर्श पर बिखर जाते हैं
मेरे अट्टहास से तुम काँप जाते हो।
चीख सुनकर तुम्हारी बगल में सोयी हुई
मेरी प्रेमिका तुम्हारे शिशु की जननी
करम ठोक कर जिन्दगी को कोसती है।
पालने में झूलते तुम्हारे शिशु से
वह चिपट जाती है
तब जाकर कहीं उसे सुकून मिलता है।
क्योंकि उसके स्तनों पर टिप-टिप करती
तुम्हारे शिशु की धड़कनों में—मैं
अब भी जागृत हूँ।

उसकी खोई-खोई आँखों में
मैं अब डूब चुका हूँ

नीली-गहरी झीलो मे डूबते
मस्तूल अभिलाषाएँ सपने
तुम्हारे शिशु के रूप मे
युग का अंतिम और एकमेव सपना बन
फिर भी आता हू मैं।

अतृप्ति हू व्यथा हू मैं
भग्न आशाओ की कथा हू मैं
तुम्हारे नगर की धूप मे रेंगता
तुम्हारे सपनो मे जागृत
तुम्हारे शिशु मे धड़कता
अब भी आता हू मैं।

क्षयग्रस्त

हमारे पैरो मे थकान रम गई है
हमारे जर्जर कदम डगमगाने लगे है
हमसे अब और नही चला जाता
हम पथो से पूछते है—
मजिले कहाँ खो गई है ?

हमारी पलको पर दर्द की पर्तें जम गई हैं
हमे अब कुछ नही सूझता
हम क्षितिजो से पूछते है—
सवेदनाएँ कहाँ खो गई है ?

पपड़ियाए हुए ओठो को हम जीभ से सिक्त करते हैं
किन्तु अभिव्यक्तियाँ शिथिल हो चुकी हैं
हम हवाओ से पूछते हैं—
अनुभूतियाँ कहाँ खो गई है ।

हमारे कानो मे शोरगुल और चीत्कार भटक गये है
चारो ओर श्मशान भूमि की नीरवता है
हम दिशाओ से पूछते हैं—
सगीत कहाँ खो गया है ?

मेरे अन्दर-बाहर आजू बाजू हर तरफ एक धुआँ उठ रहा है
मैं धुँधुवाए हुए नेत्रो से

घुलते हुए देखा । डूबती हुई मीनार देख रहा हूँ ।
डूबती हुई मीनार
मंजिलों की, संवेदनाओं की, अनुभूतियों की, रूढ़
हमारी स्थापनाओं के ढिढ़र धुएँ । घुल गये हैं
और हमारे मूल्यों पर कालिख पुत गई है ।

[२]

हमारे हाथों में अनास्था स्पन्दों की तरह बढ़ती जा रही है ।
हमारे नाखून धर्मनिरपेक्षता के कुष्ठ से गल-गलकर गिर रहे हैं ।
हमारी नसें
चिटख-चिटख कर रुड़ना पर सर्पों की तरह भाग रही हैं ।
हमारी पसलियाँ हवा में पतिंगबाजी की तरह उड़ रही हैं ।
हमारे फेफड़े गिद्धों की तरह
सुदूर आकाश में लाशों की तलाश में उड़े जा रहे हैं ।
हमारे मेरुदण्ड टूट-टूटकर बैसाखियाँ बन लंगड़े युग को ढो रहे हैं ।
हमारी आत्माएँ भ्रूणों की तरह
बन्दर-विज्ञानों द्वारा चीथी जा रही हैं ।
हमारे हृदय सर्वसंहारक विस्फोटकों को
बड़े-बड़े राकेटों की तरह ढो रहे हैं ।

हर तरफ धुवाँ है
और उसमें छिपी हुई है नासूर से बहते हुए पीप की सड़ाँध,
और मैं चुचवाए हुए नेत्रों से डूबती हुई मीनार देख रहा हूँ ।

हमारी भुजाएँ लड़ाकू विमानों के पंख बन गई हैं ।
हमारे पाँव धड़धड़ाते टैंकों के पहिये बन गए हैं ।
जिगीषा हमारे विवेक की अभेद्य पनडुब्बी में बैठकर

आदिम स्पंदन के मर्म में सुरगें लगाती हैं।
हमारे नेत्र राडर यन्त्रों की भांति युद्ध का संचालन करते हैं।

सड़कों पर घरों में दफ्तरों में, दर्शन की किताबों में
फटी हुई जेबों में और राष्ट्रों की संस्दों में
पथराई हुई आंखों में, आकाश पर और समुद्र के गर्भ में
दिलों में, दिमागों में यानी कि हर जगह
हमारी महत्वाकांक्षाओं के बीच अनवरत युद्ध लड़े जा रहे हैं। ✓

एक धमाके के साथ विस्फोट में
हमारी सभ्यता का विकास
एक विशाल गुम्बद की तरह उड़ जाता है।
पर्वतों के आपस में टकराने की गर्जना में —
विद्युत की कौंध की तरह
प्रकाश के अन्तिम दर्शन होते हैं।
अग्नि का सैलाब दिशाओं में फैल जाता है। ✓

भयाक्रान्त समुद्र क्रन्दन करने लगता है और अहंकार
प्रमत्त पृथ्वदश की भांति समुद्र को मथ कर दलदल बना देता है।
हरियाली जलकर राख हो जाती है
और नदियों का जल शर्म से गंदला हो जाता है
क्योंकि करुणा के सोतों से
स्याह विषैला रक्त प्रवाहित हो रहा है।
✓हमारे हृदय दंगों में उजड़े हुए नगरों की तरह उजड़ जाते हैं।
सभ्यताएं देखते ही देखते ठूंठ बन जाती हैं।
विषाक्त धुएं का बादल फैलता जाता है
और उड़ते हुए पक्षी उसकी चपेट में आ—
झुलस झुलस कर गिर पड़ते
दिशाएं भय से कांप जाती

फिर भी हम लड़ते हैं
क्योंकि युयुत्सा की जडो का जजाल हमारे आमाशय से होकर
मस्तिष्क तक फैल गया है ।
हमारी भूख ही हमे लील रही है ।

प्रत जो पक्षियो का कलरव बन हमारे आगन मे चहकती थी
नगर के चौक मे मृत पडी है
और ऋच्या
पराजित जाति के ध्वज की तरह क्षत-विक्षत हो गई है ।

हर तरफ धुवा है
और मैं बुझते हुए नेत्रो से
घुलते हुए दृश्यो मे टूटती हुई मीनार देख रहा हू ।

[४]

समुद्र के गर्भ मे पनडुब्बी भटक गई है
और मेरी खोपड़ी खोखली हो गई है ।
विस्फोटको को ढोता हुआ मेरा हृदय
दुर्घटनाग्रस्त हो गया है
और मेरी छाती मे शून्य घनीभूत हो उठा है ।
सहमे हुए परिन्दे मेरे नेत्र
चेहरे को पुते हुए के वास की तरह छोडकर
सुदूर आकाश मे उड़ गये है
और मेरे माथे मे रिक्तता गहरा आई है ।

इस शून्य की पर्तें उद्घाटित कर
मैं उसे अनावृत करता हू

शून्य के अन्दर शून्य
और फिर शून्य
और फिर शून्य
अंधकार दर अंधकार की तहों सा आवृत शून्य।
इस खोखलेपन में
मैं इस किनारे से उस किनारे तक दौड़ लगाता हूं।
जैसे एक तट से उठी हुई लहर समुद्र के वक्षस्थल को
रौंदती हुई दूसरे तट तक पहुंचती है।

क्रुद्ध वनपशुओं सी मेरी आवाज
इस अनन्त शून्य के व्यूह की प्राचीरों से टकराकर
बिखर जाती है।
मेरी निस्पृह हँसी सम्पूर्ण आस्था को झकझोर कर
मेरी पवित्रता को नग्न कर देती है—
पवित्रता अवास्तविक एवं अयथार्थ।

निरीन्द्रिय और निरपेक्ष
मेरी चेतना अभेद्य चट्टानों से टकराती है
और मैं होश में लौटने लगता हूं—
काई के लौंदे सदृश्य मेरा हृदय स्पंदित होने लगता है।
और सम्पूर्ण यातना पुष्पोद्यान की तरह खिल उठती है।

नेत्र विहीन—
फिर भी मैं प्रकृति के रंगों को भोगता हूं।
कानों के पर्दे चीत्कारों से फट गये हैं
फिर भी लहरों से उठते हुए संगीत से अभिभूत होता हूं।
टूटी हुई टांगों से दिशाओं को महसूस करता हूं॥
ध्वस्त भुजाओं से आकाश को टटोलता हूं॥।

हर तरफ धुवां है
और मैं कड़ुवाए हुए नेत्रों से
घुलते हुए दृश्यों में डूबती हुई मीनारें देख रहा हूं ।

सोचने पर विवश हूं

शक्तिशाली मेरुदंड पर तनकर खड़ा हुआ
सूर्य को अर्घ्य अर्पण करता मेरे पिता का व्यक्तित्व
बोझ से झुकने-झुकने को हो रहा है।
समय की मार से उनकी त्वचा उधड़ रही है।
बोझ अनुक्षण बढ़ता ही जाता है।
मेरे माध्यम से निर्मित इंद्रधनुष अब
उनके नेत्रों में धुंधले पड़ते जा रहे हैं।

यह सब सोचने पर मैं विवश हूँ, किंतु जब सोचने लगता हूँ
तो चेतना साथ छोड़ देती है।

[२]

मैं बड़ी-बड़ी बातों से ऊब चुका हूं
दु:खभरी गाथाओं से भी मैं ऊब चुका हूं
उपदेशकों को अपनी ओर आता देख
हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं।
शुभ चिंतक जहर पीकर पचाने की सलाह देते हैं।
वे कहते हैं यह तो सनातन है,
सर्वव्याप्त है,
'दुख हमको मांजता है', उनके लिए दु:ख
एक फैशन है फलसफा है।

ये सामाजिक अभिशाप उनकी मानसिक अय्याशी
और मनोरञ्जन के साधन है।

सच उनके भद्दे नाखून
चिपचिपे नेत्र और पीले पीले दाँतो को देखकर
मैं स्वप्न मे भी भय से चीख पडता हू।
आह मैं तो अभी खिल भी नही पाया हू
और मेरी सुकुमार पखुडियो पर बर्फ पडने लगी है।

[३]

हर तरफ अभाव है, अनिश्चय है कटुता है, अनास्था है।
सागर वाष्प बनकर उड गया है
और मेरी नाव रेत मे धस गई है।
सहायतार्थ कातर नेत्र पाते है
लोगो की बधी हुई मुट्ठियो म सिर्फ आसू है
और घुमते हुए दिलो मे छिपे हुए स्तुति स्वर।
आह! मेरी नाव रेत मे धस गयी है
और चिलचिलाती धूप के उस पार
बनती हुई मरीचिका मे
मैं अब भी दूर कही ठगा जा रहा हू।

[४]

जेबो मे हाथ डाले लोग नारे लगा रहे है।
बुतो के कन्धो पर चढ़—भण्डे उठा रहे हैं।
ज्ञान के विज्ञापन बने हुए बालो को नोचते हुए लोग।
रूप लटकाये हुए बक-भक करते नाखूनो से
आत्मा को करोचते हुए लोग।

मैंने उनसे अनेक बार कहा है
कि वे बकवास बन्द करें ।
जब वे नामाद होते हैं—ना मते लगते हैं ।
अजायबघरों में मैंने उनको तुझा देखे हैं ।
न मालूम लोगों को क्या हो गया है ?
न जाने जिन्दगी ऐसी क्या होगयी है ?
न हम सुनकर हँस पाते हैं न रो पाते हैं,
तनाव सदैव हमारे जबड़ों को एक्स्ट्रोक्स की भांति
जकड़े रहता है ।
चमक पैदा होते-होते ही नेत्रों में विषाद उभर आता है ।
शाखों पर लदे हुए पुष्प
उस समय अखबारनवीसों की खोखली हँसी बन जाते हैं । ✓

[२]

नगर की गगनचुम्बी मीनार से खड़ा होकर देखता हूं
केंचुओं की तरह रेंगती हुई ट्रामें
पिस्सुओं सदृश सड़क से चिपकी हुई मोटरें
फाड़कर फेंके हुए रद्दी कागजों की भांति हवा में
उड़ते हुए लोग
और शाख से भरे हुए पुष्पों-सी बदरंग स्त्रियां
उफ ! मुझे मितली आ रही है इस दृश्य पर !
और कुछ समय पश्चात् मुझे भी इस दृश्य का
एक बिन्दु बनकर रेंगना होगा ॥ ✓

मूलभूत अनिवार्यताओं के बोझ से दबा दबा
वंचनाओं पश्चातापों और विवशताओं के कूबड़ को
अपनी पीठ पर ढोता

समय के साथ बदलते हुए सत्य को पकड़ने में
अनुतप्त प्रयत्नशील मेरा संघर्षरत मध्यमवर्गीय मुक्तिबोध
क्या पतझर-अभिशापित ठूँठ ही बना रहेगा ?

[६]

आँगन में आरामकुर्सी पर आँखें मूँद
इस गतिमान जगत से जब निर्लिप्त होना चाहता हूँ
तभी पलकों पर महसूस करता हूँ
कोई मृदु स्पर्श ।
मस्तिष्क में दबी हुई आग पिघलती है
सम्मुख रखी हुई कुर्सी क्या सदैव ही खाली पड़ी रहेगी ?
मेरा लहूलुहान और अतृप्त हृदय क्या
अपूर्णता में ही दम तोड देगा ?

आँखें खोलने पर
आकाश और भी अधिक नीला लगने लगता है ।

[७]

अब भी विवेक मेरा साथ देता है ।
विद्युत् के झटके के अनुरूप मुझमें कहीं
एक विचार कौंधता है
अभी तो कष्टों की शुरूआत है
आक्टोपस के हाथों की पकड़ हर घड़ी बढ़ती ही जाएगी ।

अनिश्चय और अराजकता के सम्मुख
मेरी क्षत-विक्षत आस्था चट्टान की तरह तनकर
खड़ी हो जाती है ।

धूप की स्नेहमयी अँगुलियाँ मुझे छूती हैं
—मैं पंखुड़ी-पंखुड़ी हो जाता हूँ ।
वायु के सनसनाते हुए झोंके
मुझे सुदूर अंतर्प्रांतर तक झकझोर देते हैं ।
मेरे रोम-रोम से प्रस्फुटित होकर एक संगीत
दिशाओं में घुलने लगता है ।

दुखती हुई रगे

डक्टर । काट दो मेरी दुखती हुई रगे ।
मैं उन्हे पीछे अतृप्त छोड आया हू ।
वे सब रगे
जिनमे कभी कोई अग्नि प्रज्वलित हुई थी
और असमय ही बुझ गई ।
आज कडुवाहट भरा दम-घोट धुवा
अधे सर्पों सा झुझलाता हुआ
उनमे भटक रहा है ।

डाक्टर । काट दो वे तमाम रगे
वे जोड़ तोड़ वे ग्रथियां—
जो मेरी गति को वेदना मे जकडती हैं ।
जीभ से आमाशय तक की तमाम रगे
जो आज तक अतृप्त हैं ।
मेरी जीभ में खुश्की है
मेरी अतड़ियो में एठन है
मन में कटुता है
और माथे पर बल हैं ।
अब भी कई बार सूखी अतड़ियों मे
कोई भूखा कुत्ता दर्द से कराह उठता है
और अनायास ही मेरी जीभ
लिसलिसी हो जाती है ।

और वे तमाम रगे भी डाक्टर
जो, आमाशय से हृदय तक धुवे में अट गई हैं।
मेरे नेत्रा की चमक नष्ट हो गई है
शिराओ का तनाव ढीला पड गया है
हथेलियां कुम्हलाये हुए कनेर पुष्पो की तरह
लटक गयी हैं।
फिरभी समय-असमय
वहां बैठा परीलोक का क्षीणकाय राजकुमार
उठ बैठता है और उन्मादित गजराज सा
दिशाओं पर मढ़ी क्षितिजों की सीमाओं की
धज्जियां उडा देता है।
तब मुझे लगता है कि मैं अब भी जीवित हूं।
उफ। उस समय मैं कितना कुरूप लगता हूं।

काट दो। डाक्टर, काट दो॥
मेरी वे तमाम रगे
जिन्हें हृदय से मस्तिष्क तक
प्रचण्ड अग्नि ने उमेंठ दिया है।
अब वे अवग रगे विकृत हो
अनेकानेक ग्रन्थियों का रूप धारण कर चुकी हैं
मेरे पांवों में जड़ता है
मेरी भुजाओं को लकवा मार गया है
फिर भी मेरा कठमुल्ला आत्माभिमान
घायल सिंह सा दहाड़ कर उठ बैठता है।
ऊंचे ऊंचे सिंहासन दीमक के लोथड़ों के सदृश
जमीन पर आ गिरते हैं और मेरा गौरव
उन्हें रौंदता हुआ आगे बढ़ जाता है।

डाक्टर ! काट दो मेरी वे तमाम रगें
अन्यथा मैं एक प्रलयकारी तूफान बन जाऊँगा
एक भूकम्प बनकर सर्वनाश कर दूँगा
और ज्वालामुखी बनकर फट पड़ूँगा
या गाज की तरह
इस सभ्यता पर गिर पड़ूँगा।
डरो नहीं डाक्टर।
तुम्हारे हाथ कांप रहे हैं। तुम्हारा पीला चेहरा
तुम्हारी चेतना के लुप्त होने का साक्षी है।
पर तुम्हीं कहो आज
कितना मुश्किल हो गया है
आत्मा को बचा पाना।

इतना ही जीवन

छज्जे नीचे
सफेद भक्क कबूतरो का जोड़ा
करता है घुटर्र-घूँ ।
टब के पानी मे
फरफरा कर छू हो जाती है गौरय्या
नीलकण्ठ बैठा रहता है
मुडेर पर
आगन बीच
बिछी रहती है हरी दूब ।
बगिया‌ओ मे महकते है
अनगिनत पुष्प
भीने बादल की बाहो मे
बेकाबू हो उठता है पूर्ण चन्द्र
टेकडी पर बैठा मै देखा करता हू
झरने की कलकल मे घुलती किरणो को ।
चम्पई गर्दन पर लहराते सुनहरे बाल
याद हो आते है अनायास ।
भर आता है मन ।
कितना अच्छा होता
यदि होता बस इतना ही जीवन ।

वियतनाम

इस धरती से पैर हटाओ
यह धरती मेरी है
मेरी मां रोपेगी यहां—
तुलसी का बिरवा,
मेरी बहन यहां—
रांगोली मांडेगी,
मेरे बापू खाट बिछा कर बैठेंगे
और कुछ देर सगवारियों से गोठियायेंगे ।
मैं तुमको यहां बारूद नहीं बिछाने दूंगा,
यह धरती मेरी है ।
मैं इस पर गुलाब की कलम लगाऊंगा
जो कल रक्तिम हो फूल उठेगी
और सुगंध—
फैल जायेगी धूपसी—आंगन में ।

श्यामसुन्दर घोष

सुबह का ऋण

एक विवटल धूप
यह महाजन सुबह का ऋण दे गया।
और बदले मे सभी कुछ ले गया।
इस तरह आकंठ ऋण मे डुबा कर कोई
अगर कर दे अकिंचन, धन्य मानूंगा।

फिर हथेली पर धरो अंगार

मैं रचूंगा सेतु सांसो का
दस्तकें दो तुम, खुले सम्भावना का द्वार।
लो छुडाता हू उगलियां पर लगे
दाग कटुता के।
पोछता हू तूलिका के विकर्षक ये रग।
अस्वीकृत प्रारूप करता हू
जिसे अंतिम सत्य माना था।
निषेधो का क्षरण वरे सम्पूर्ण जीवन
कब किसे होता सहज स्वीकार ?
जहर से भिद कर
नीलवर्णी हो उठी है प्राण-मन-काया।
विवशता मे ही हुई उपलब्धि
अब सहज वैशिष्ट्य देती है।
और अब तो मैं
रिक्त होकर भी निनादित हू।
फिर प्रताड़ित करो द्विगुणित वेग से
फिर हथेली पर धरो अंगार।

शाम : एक इम्प्रेशन

शाम एक उदास लडकी की तरह
गुनगुनाती चल रही फुटपाथ पर ।
और मैं बच्चे सरीखा
झिलमिलाती ओढ़नी को देखता
पीछे लगा हू ।

सन्नाटा

सन्नाटा होटल का बेयरा है
कुंठा का टोस्ट और उदासी का आमलेट
साफ चकमक प्लेट मे सजाकर लाता है
सम्मुख रख जाता है।
बला से हम कांटेदार चम्मच से
धीरे-धीरे कुतरें
गले के नीचे उतारने का साहस नही करें।
वह बिल लेकर आयेगा
टिप वसूलेगा, हल्के मुस्करायेगा।

कुछ भी हो

कही कुछ भी हो
कोई कुछ भी कहे
वियतनाम मे हजारो लोग मरते है, मरें
कोई हाइड्रोजन बम का प्रयोग करता है करे
कोई कैंसिल करदे हमारे देश के साथ हुआ करार
किसी बात पर लानत भेज दे हमे समूचा ससार
सहायता, सद्भाव और सहयोग के नाम पर
हम कर्ज लेते हिचकगे नही
भीख मांगते शर्मायेंगे नही।
अब तो हमारी महिलाओ के गर्भस्थ शिशु
मुंह बाये हाथ फैलाये रहेगे
आंखें निहारती रहेगी समुद्र
कि कब आते हैं नाज के बोरो से भरे जहाज
कि कब दी जाती है दुग्धचूर्ण के लिए
प्रलोभनपूर्ण आवाज।

सुबह का सूरज

सुबह का सूरज चितेरा है
किरणो की तूली से तस्वीरे अनगिनत बनाता है
लाल, हरे पीले
जाने कितने रग के कटोरा का स्वामी वह

सधे हुए हाथो से
लकीरे खीचता है रग भरता है
कभी जागरण और उल्लास के चित्र
कभी आशा और विश्वास के चित्र
कभी गावो के चित्र कभी शहरो के चित्र
कभी गगा की उठती हुई लहरो के चित्र
कभी चाहो के चित्र कभी आहो के चित्र
कभी गलियो-दुराहा-तिराहो के चित्र

एक ही भाव से हरेक चीज की तह में
झाकता है
सुबह का सूरज चितेरा है
अनगिनत चित्र आकता है।

आखिरी सिक्के की वसीयत

रात के जुएघर की
आखिरी बाजी का
बचा हुआ सिक्का सूरज
हताश हाथों से
बाहर फेंक दिया गया है।
आओ हम आगे बढ़
रोक लें।
वे शर्म के मारे
झुके हुए माथे ले
घुटनों में मुंह छिपा
अंधेरे कोनों में
लुढ़क सो जायेंगे।
हार और शर्म की व्यथा-कथा
होठों होठों बुदबुदायेंगे
सिर नहीं उठायेंगे।

हम नदी किनारे
इस बचे हुए सिक्के को
मुट्ठियों से निकालेंगे
हवा में उछालेंगे
होठों से छुआयेंगे
माथे पर धारेंगे

फिर असङ्ख्य चमकीली किरणों के सिक्कों में
इसे भुनायेंगे
हथेलियां भर-भर लुटायेंगे ।

यह आखिरी सिक्का
अनजाने ही
हमें वसीयत में
दे दिया गया है
हम हारेंगे नहीं
फूल हवा, कलरव, पराग
न जाने क्या-क्या उगायेंगे ।

प्रतीक्षा है

सिंधु-तट पर खड़ा हूं
प्रतीक्षा है किसी ऐसे पोत को जो कालवाही हो
मनुज के श्रद्यावधि आक्रोश को संजोये
दर्प के दृढ़ चरण धरता
सिंधु के विक्षुब्ध चक्रावर्त को
मार कर गति के थपेड़े
सुप्पियो के अतल कारागार में
दफ्न करता चले।

चमकता मस्तूल जिसका
प्रखरतर मध्याह्न के शत-शत समन्वित सूर्य की
आभा मलिन करदे
पाल जिसके हवाओ की विपथगामी भुजाओ को
तोड़ दें
आंधियो को मुट्ठियो मे पचा डालें
हस्तियो के सहस्त्रा चिग्घाड़
जिसकी पग-ध्वनियो मे डूब कर यो लगें
जैसे कही पर कुछ गूँजता हो।

एक किरण

एक किरण मुट्ठी मे मेरी
ओ' मैं सूर्य बन गया हू

अब तो अधियारा लुकता-छिपता है बद कपाटा मे
लगडी कुठा फिरती बन बन सूने घाटो-बाटो मे
उदयाचल पर टके रहे ये कुहरा के भारी पर्दे
एक किरण मुट्ठी मे मेरी ओ' मैं सूर्य बन गया हू।

अब निर्भय चौकडियां भरते विश्वासो के मृगछौने
आखेटक सशय-विजडित क्षण लगते आज बहुत बौने
दुरभिसधियां, तोड रही दम, एक शब्द भूला-भटका
मेरी मुट्ठी मे आया है ओ' मैं सूर्य बन गया हू।

प्राक्कथन हूं

प्राक्कथन हूं मैं किसी अनलिखी गाथा का
क्या जुड़ूं परिशिष्ट बन कर वही ?

अभी ही छिटका ज्वलित भूगर्भ से
आलोक का अधिकांश वातावरण में संन्यस्त।
इसलिये ही लग रहा ऐसा
एक क्षण मे ज्वलित उल्का पिंड सा खर तीव्र,
एक क्षण उस सूर्य सा जो हो कुहा-विन्यस्त।
किन्तु इतनी बात तो तय है
डाल विच्युत पत्र सी हत भागिनी
नियति मेरी नही।
उदय के क्षण मे अजब है यह विपर्यय
चतुर्दिक ही क्षुब्ध पारावार।
हर मसीहा चाहता है
हर किरण मुड़ती रहे निश्चित परिधि मे
पराजय कर ले सहज स्वीकार।
हर युवा स्वर जुड़े ही परिशिष्ट बनकर
क्लान्त गाथा मे
हुआ है यह कही ?

सलामी दो

अंधेरी गली मे पैदा हुई इन सूर्य किरणो को
सलामी दो।

अंधेरे के कठिन आवर्त मे
छल से घिरे भटके
समय की वर्जनाओ से निहत्थे जूझने वालो,
कठिन सशय-जनित परिवेश से जकड़ी
झगड़ती सी
जटिल सच्चाइयो की धड़कनो को बूझने वालो।
अंधेरी घाटियो मे सिर पटकते हुए झरना को
सलामी दो।

अधूरी बिम्ब-छवियो मे नही सदर्भ अँट पाता
विरल अभिव्यक्तियां कुछ दूर चल दम तोड़ देती हैं
अधूरे अधपके सपने न कोई रग भर पाते
विवश सचेतना सघर्ष से मुख मोड़ लेती है
कठिन मरुभूमि में राहे बनाते हुए चरणो को
सलामी दो।

अंधेरी गली में पदा हुई इन सूर्य-किरणो को
सलामी दो।

नये शिशु का जन्म

यह सुखद क्षण है।
द्वार को घेरे दिशाएँ खड़ी हैं
समुत्सुक हो उषा, सन्ध्या, रात्रि, नभ की तारिकाएं
गवाक्षों से झांकती हैं।

भरा आंगन
खिलखिलाहट, कलरवों से गूंजता है।
रंगी पृथ्वी महावर-रंजित पगों से।
सुरभि सांसों की, अलक की, पुष्प-मुख की
घुली है वातावरण में।
कंकिणी-ध्वनि मधुर मीठी बज रही है
हवा शुभ-क्षण की प्रतीक्षा में
हर्ष-विह्वल है—
विरल पतली उंगलियों से
वाद्य-यंत्रों पर
थाप देती है।

इन्द्रधनु के रंग सातों मचलते हैं
नृत्य करने को संवर कर खड़ी हैं नक्षत्र-कन्याएं
बगीचे की कली, पत्ती, घास, फुनगी
आ जुटी हैं
एक-दूजे पर चढ़ी-सी उचक करके झांकती हैं
भरा है आंगन।

द्वार पर बैठे हुए दिक्पाल, नभ, भास्कर मरुत,
आलोक-धन्वा कोटि-कोटि देवता
विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेशादि महत्जन
मौन कुछ गम्भीर-से है
किन्तु सबके हृदय मे है एक उत्सुकता।

धरा करवटे लेती है
प्रसव-पीडा का निविड क्षण
योजनो तक अति सुखद कम्पन जगाता है।
पीत मुख को दर्द की आभा
नया सौन्दर्य देती है।

आज मैं बौरे रसालो-सा मुदित हू
हर्ष का उद्वेग मन मे अट नही पाता
अभी मेरा द्वार-आंगन
गीत-वाद्यो से गुजेगा
श्लोक आशीर्वाद के उच्चरित होगे
वेद मन्त्रा, यज्ञ-ध्वनि से गगन व्यापेगा
महावर-रजित पगो से दलो जाकर
भूमि निज को धन्य मानेगी।
उषा, सध्या तारिका, सौदामिनी मिल कर करगी नृत्य—
आस्था की कनिष्ठा कन्या
नये शिशु को जन्म देती है।

चली आ रही आंधी

हू-हू करती चली आ रही आंधी
ये खेमे समेटे लो
सन्दूको मे रखो झटपट
कांचो के रगीन खिलौने
हल्की-फुल्की रग-बिरगी चीजें
कागज के फूला की मालाए, रगीन किश्तियां
कच्चे रगा की तस्वीर
लाहो की चिडिया गू ग, देवता-देवियां

बहुत दिना तक तुमने लोगो का मन मोहा
हल्के-फुल्के कौशल का बाजार रचाया
अपने सिर की कलगी मे
कितनी ही चिडियो के पर खोसे
खेमे गाडे, ध्वजा उडाई, रथ दौडाया
लेकिन कोई है जो बडा निठुर आलोचक
देखा करता है दुनियां के गोरखधन्धे
असल नकल का गणक
नियामक घटनाओ के विपुल वेग का
जो जीवन के लिए चयन करता है उपयोगी तत्वो का—
स्वस्थ पिडलियां, तनी भुजाए
चौडी पेशानी, दृढ कधे
स्वेद-बूद कर्दम, पकिल पथ

पर्वत की चट्टानें, मिट्टी क ढेले
पेड़ो की टहनी।

उसे रिझाना खेल नही है
झांसा देना या आखो मे धूल झोकना बड़ा कठिन है।'

आह्वान एक मन स्थिति

समय का रथ रुक गया है
आज मेरे द्वार
मैं आश्वस्त हू, विचलित नही हू ।

खोजता हू नही मिल पा रही प्रत्यचा
याद आता है नही रक्खा कहा तूणीर
कवच पहने कम से कम एक युग हो गया
शख पूजा-कक्ष की शुभ वेदिका पर कही रक्खा हो
ध्वजा घर के किसी कोने हतप्रभ सी हो ।

आ रहा है योजनो को लाघता रव घोर
युद्ध का खर तुमुल स्वर मन को रहा झकझोर
स्वीकार है यह मुझे
किन्तु मैं आश्वस्त हू विचलित नही हू ।

अगर ऐसा हो कि प्रत्य चा मिले जजर
तूणीर हो सम्पूर्णत खाली
कवच हो हतवीर्य, म्लान, उदास
फूकने पर शंख से जय-ध्वनि नही निकले
समय का रथ मुझे गति का अस्त्र देगा
रिक्त हाथा मे अनामा शस्त्र
ध्वजा के मिस ज्वलित उल्कापिड

रथ के भाल को दीपित करेगा
उग्रतर सकल्प वेष्टित करेगे यह तन
इसलिए आश्वस्त हू , विचलित नही हू ।

दो पीढ़ियों की व्यथा

व्यथा झेली थी
पूर्वजों ने।
नहीं हमने।

तप्त रेती में चले वे
आंधियों में पले
बियाबानों में भटकते रहे
रात काटी ठूंठ पेड़ों तले
लांघते वे गये
जल का उत्स पाने
योजनों का अचीन्हा विस्तार
अगम अचला के अछूते शृङ्ग
दलदलों में अभय धंसते गये
रौंदते ही रहे
हर दिशा हर कोण
क्योंकि मां की कुक्षि में थे हम।

ढूंढते थे वे सजल भू-भाग
जहां हो फल-फूल, झरने, लहलहाती घास
चांदनी शुभ्रा रजत सी, उषा का आलोक
इन्द्रधनु का बिम्ब, वर्षा-मेह, सुखद प्रकाश
क्योंकि ऐसी भूमि में ही
भविष्यत् को जन्म देना था

हम थोड़े कुछ हुए
चलने लगे घुटने टेक कर जब
मातृ-मुख से सुनी हमने
पूर्वजो के कष्ट की यह कथा।

पिता तो जब भी लिए तूणीर-धन्वा
रौंदते थे जंगलों की भूमि
मापते थे पर्वतों की तलहटी दिनरात
थके-हारे शाम को जब लौटते थे
हमें अपने वक्ष पर लेकर
मुस्कुराते थे।
और हम मृग-शावकों की भांति
रौंदते थे घने बालों से ढके उस वक्ष को।
मुदित होते थे।
यही क्रम रोज का था।

और जब कुछ बड़े हम सब हुए
हमें भेजा गया शिक्षा हेतु
अपरिचित अनजान लोगों बीच
जगत जो बिल्कुल अनोखा था।
हम निरन्तर सकुचित से रहे
अपने को हमेशा अकेले असहाय लगते रहे
अपरिचितों से हम न गांठ जोड़ पाये।
डूबकर आकंठ अपनी हीनता में
कहा हमने—
व्यथा झेली है पूर्वजों ने नहीं
हम ही झेलते हैं।

कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह

बहिष्कृत सत्य

अकस्मात् आग लगती है। बिजली गिरती है। अकस्मात् बाढ़ आती है धरती डोलती है। ज्वालामुखी अकस्मात् फूट पड़ता है। अकस्मात —बिलकुल अकस्मात् नदी दौड़ निकलती है—समन्दर के अन्दर हरकत पैदा करती है। सीप मे मोती ढलते हैं। कमल झीलों और सरोवरों में खिलते है। सूरज चमकता है। और चांद दूर्वा और रेत पर एक सा सही करता है। रात होने पर कोई खुश होता है तो कोई मर जाता है। सुबह जागरण का सदेश मिलने पर भी किसी को नींद नही टूटती और कोई रात-रात भर जगा रहता है। यह सब अकस्मात् ही होता रहता है। और जो अकस्मात् नही होता वह कुछ और होता है। जैसे धरती सीमित और आसमान असीमित होता है। फिर भी एक रत्न-गर्भा कहलाती है। और दूसरा खाली रह जाता है।

अकस्मात् यह भी नही होता कि कोई किसी का खून करता है और कोई मारा जाता है। आग लगने के पहले ही आग सुला दी जाती है। (जबकि यह दूसरी बात है कि वह सोयी नही रहती।)—ताजमहल अकस्मात् घटने वाली कोई घटना नही, उसे तवारीख के ऊपर घटाया गया है।

सच यह बिलकुल अकस्मात् नही कि सगमर्मर और हीरे-जवाहरात से भूखी हड्डियो मे चमक ज्यादा होती है। और लोग जिसे प्रेम और कला और जाने क्या-क्या कह ते हैं, समझते है, मैं उसे चुपके से शहादत कहता हू।

ये लोग भी क्या खूब हैं। आदमी का अर्थ धो डालने पर तुले हैं। जानवर हैं। जिन्दगी को आदिम अहेर और दुनिया को जगल किये चलते हैं। बाहर निकलते हैं। चरते-विचरते हैं। फिर, कन्दराओं मे वापस हो जाते हैं। 'जोड़े' हुए तो रति करते हैं। या, फिर, रति के लिए ही उद्विग्न हुए रहते हैं। खाते नही। न ही पीते हैं। सिर्फ सोख जाते या पजा सख्त करते। और मारते-मर जाते हैं।

बचे तो खड़े मद जाते हैं। और कोई व्यापार नही। नयी-नयी सृष्टि का विधान स्वय विधि को मिटा कर ही करते हैं। शान्ति-सुव्यवथा। अहिंसा और प्रेम। शर्त सहअस्तित्व की आरोपित सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना—सब मात्र प्रवचना है। दर्शन आत्म मथन नही, ऊपरी मुखौटा है। बिना विश्वास, विश्वास कर लेते हैं। और कोई बात नही ऊचा उठ जाने के लिए ही ऊचाई को छूते हैं

कैसी आस्था है यह। कैसा स्वांग है। सीजर के हत्यारे छाती पीट रोते हैं। ऊपर से। भीतर से दाव-पेंच चलता है। कितने कितने घोड़े महत्वाकांक्षा के छुट जाते। सरपट दौड़ते। छोटी जागीर की हरियाली कुछ टापो के नीचे रौंद जाती है लोग खड़े खड़े मुह आंखें

फाड़ देखते, चल देते हैं। (कहां गिरा हाथी कहां हिरन मारा गया, कहां निर्दोष नीलगाय पर गोली छुटी या उजड़ा खाता गौरया का—उन्हें क्या पड़ा।) जहां पसर जाने को जगह मिल जाती, पसर जाते हैं।

एक दिन उस गांधी को गोली मारी गयी। कल केनेडी का खून हुआ। आज आख़िर थक कर यह नेहरू भी चुप हुआ। सारा-का सारा यह आलम जैसे सो गया। धड़कनें सन्नाटे के सीने की चलती रहीं। मगर फिर वही क्रम। कॉफी हाउस, होटल और रेस्त्रॉं का वही जाना शोर। सिनेमा गृहों बाजारों और सड़कों की चमक-दमक वही। सट्टे और चोर-बाजारी की लू और सर्दी दीवाले की। वही भूख, वही खाद्य। वही नींद और मैथुन। और मानव उपलब्धियों का दिन पर-दिन मोटा हुआ जाता इतिहास।

काल निरपेक्ष दस्तावेज पर हस्ताक्षर एक नन्हा-सी बूंद का। लोग बिना दस्तखत या अंगूठे के ठेप के गवाह। अखण्ड राज्य राम राजा का।

खोया हुआ जगल

यह सहने की बात कोई अर्थ नही रखती। रस्सी, सिर्फ राख हो जाती है। कि समन्दर के पेट में आग लगी रहती है—धरती भीतर से कोयले और राख और पानी हैं—कौन देखता है ?

दृष्टि समन्दर के उठते और गिरते हुए सीने—ऊँचाई-निचाई पर—धरती की रहती है। (कही कोई व्यतिक्रम नही होता।) मुर्गे समय से बाग दे देते हैं।

कुत्ते और स्यार भी नही चूकते। गदहों के लिए हर मास बैसाख है। बिल्ली गुस्से मे पंजे मार मिट्टी उछालती (अपने नख तोड़ लेती) है जबकि चूहों की मजलिस लगी रहती है। कैसी हिम्मत है। देखते-देखते सब कुछ कुछ कुतर डालते है। और पता नही चलता।

जब कभी पता भी चलता है, तो देर, बहुत देर, हुई रहती है सोये हुए जगल के स्वप्न-रत राजा की नीद अकस्मात टूट जाती है। बिल्कुल अकस्मात ही पहरा पड़ जाता है। गुस्से में राजा को दुर्ग तक का खयाल नही रहता। हुक्म जगल मे आग लगा देने का होता

है। (चूहो को जैसे भी हो, तब खत्म करना रहता है।)

मगर चूहे भी क्या जगबाज हैं। पूछ से रूई का दुर्ग बांध लेते और खीचते हुए राजा के पास पहुच जाते हैं। बड़ी विनम्रता से कहते—हुजूर, हम हाजिर हैं। सारे जगल को क्यो जलाया जाता, जब जलने के लिए हम खुद ही आ पहुचे है।

राजा सब बात समझ जाते। हुक्म वापस लिया जाता। फिर, ख्वाबो की बस्ती बस जाती। और जगल को—जगल की सारी हरियाली को—रौनक को चूहे कतरते। आमरण अनशन हिरनो और मोरो के गले पड़ जाता है।

दर्पण

यह कैसी है—किसकी है धुन ? सोना क्या बोले
क्या बोले चांदी ? हीरे से क्या पूछूं कोयले का गुन
(कब वह काला है, कब है लाल—हीरा क्या जाने
भूख के लिए अनुशासन क्या, क्या सदाचार ? श
अन्दर हो, या कहीं बाहर हो घर के, क्या मतलब
दो दो चार नहीं होता, और चाहे जो हो ।-
कितना अजीब यह आंखों का विनिमय-व्यापार ।

सुबह कब होती, कब होती शाम । बिके हुए सप
के लिए है कौन रात लाती आराम । एक आ
उनको है । एक आंखें इनको । इतने बड़े फासले व
पीता है कौन मैदान । जहां आंसू भी हुक्म पर चल
है, धर्म-ईमान सभी बंटी हुए रहते हैं—राम राज
लावेगा वहां कौन राम । एक राम उनके हैं । एव
राम इनके । कौन समझाये । उनके झगड़े के बीच
देखो, अब कौन कटता है राम ।

डाँवाडोल दुनिया है । गजब ग्रह योग । घर-घर
लगी हुई आग । आसमान माथा झुकाये है—जल नहीं
पास । लकवा जो गया समंदर को मार —आंखें फाड़
देखता है—बेबस, बे-बाक् । प्राणों का मोह है जि
अब वे आखिर जायें कहां भाग । लपटों को कौन
नाग नापे । कौन धरा भग्नावशेष को रखे समाल ।

अ-तार्किक

हवा जो गंदी जगहों से गुजर कर नहीं आए स्वच्छ ही होती है। दिल ओ दिमाग को ताजगी पहुचाती है। कोई नही देखने की आदत नही डाले तो रोशनी भी आंखो की ज्योति नहीं छीनती। धरती सबके लिए होती है जो कोईउस के सीने मे दरार नही करे या उसकी आखो पर दीवारो की पट्टी नही डाल दे। समय सबको समान रूप से लेता है। ले ले जो आदमी और आदमी के बीच कभी ईश्वर का न्याय नही खड़ा हो—और कोई उसकी व्याख्या अपने मन से न करता हो। सब आप ही आप होता रहे—कोई निमित्त या उपादान कारण नहीं हो तो फिर कहीं विकृति या विपर्यय नही हो। रोशनी हर जगह हुई रहे। भीतर या बाहर कहा कोई कुहराम भी नही हो। युद्ध और शान्ति का प्रश्न नही उठे। बेलग्रेड या काहिरा मे जमावा नही हो। पचशील पर चलने वाली बहसें समाप्त हो जाए। जगह जगह लोगो की पसन्द के माफिक भरतनाट्यम् या जॉज या वॉल चलता रहे। क्रिसमस और ईस्टर और होली का रग कभी फीका नही पड़े। रोटी और भात नहीं मिले भी तो लोगबाग मछली और मांस और फल और केक और क्रीम लेकर मस्ती से चलते रहें।

शोषण और दमन और भूख और हल्ला हड़ताल सब लोगो को बेमाने लगने लग—ये शब्द तक कोशो से निकाल दिए जायँ ।

साफ सुथरे घरा मे रहने वाला—अच्छे कपड़े पहनने वाला आदमी कभी गदा नही हो सकता । (गदगी दृष्टि-दोष है) वसे, ग दगी कही हो भी तो, इसलिए कि उससे बीमारियाँ फलती है, लोग नाहक परेशान हो जाते है—उसका इलाज सामूहिक या कामराजी पैमाने पर कराया जाय, अविलम्ब । क्योकि जैसे भी हो, मरने से आदमी का जीना कही ज्यादा जरूरी है । (क्या मालूम कौन आखिर कौन निकल जाये ।)

और एक बात और है अर्थनियन्त्रण के युग मे फिजूल खर्च बद किया जाय । आखिर कफन की भी क्या जरूरत है आदमी जब भूखे और नगे मर जाँय ।

हद

बात बातो का जवाब नही होती—सवाल हो सक
जैसे आदमी आदमी के लिए आज सबसे बडा सवा
कभी कभी ऐसा भी होता है कि सिर्फ सवाल होता
जवाब कुछ भी नही। और सारा का सारा जीव
सवाल में हो चलता है।

अभी कल का वाकया—सवाल है—(या कोई
मामूली बात—जैसा समझ लें)—अपने कमरे के ज
बठे बैठे—जङ्गल बिल्कुल नगा है—बाहर गली मे देख
—कभी-कभी ऊपर भी कटे आसमान पर। (वहां से
आसमान ही नजर आ सकता है।) दो बच्चे, पत
कबसे वहां बैठे खेल रहे थे। सहसा झगडे पड। उ
खडे हो गये। उनके चेहरा पर तल्खी आगई। तब
एक को मां ने बुलाया—फिर दूसरे को। और वे
चले गये—जसे भागने को कब से तैयार हो।

फिर बिल्कुल सयोग की है बात—वहाँ एक
गोरय आ गई। उसके पीछे एक और आई। दोन
काफी चहकती थी। कोई विग्रह-विच्छेद कहो नज
नही आता था। मैं उनका फुदकना मटकना देख
रहा था (मस्तिष्क एकदम निद्व द्व था।) फिर जाने
कसे, महानगर का ख़याल हो आया। ख़याला का

ख्रुश्चेव के पतन का—नेहरू की मौत और कैनेडी की हत्या का और जाने कैसे-कैसे, कितने-कितने खयालों ने धावा-बोल दिया था। उनके जाल से निकलने मे समय लग गया। फिर देखा तो गैरयों का पता नही था। और मैं चतनों को समेट कर पुन अपने कमरे मे कद हो गया था।

सिनेमा जाने की बात थी। अभी कपडे बदलकर बाहर निकलना ही चाहता था, कि राशन का खयाल आ गया। बहुत लम्बी क्यू पड जाती है। और दिन-दिन भर खडे रह जाने पर भी व्रत पूरा नही होता—एकादशी की नौबत आ जाती है। करने को एम ए पास किया है। और लोग थोड़ा बहुत जानने भी लगे हैं। फिर भी यह हाल कि ठेला और रिक्शा चलाने वाले लोगों के कधे से कधे जमाकर—पीछे से सीना रगडते हुए दिन-दिन भर खड़े रहना पडता है।

बात बिल्कुल अखरती नही, जो वहा सारा देश साथ होता। मगर मैंने बहुत बहुत खोजा— वहां कभी किसी सेठ-साहूकार या कारों मे चलने वाले बाबू या मच-चढ़ बोलने वाले नेता के दर्शन नही हुए हैं। (मुमकिन है ये लोग चावल चीनी और आटा नही खाते हो—बचत की सरकारी अपील पर अमल कर अंडा और सेब और बिस्कुट और क्रीम पर सब्र कर जाते हो।)

फिर बात आगे नही बढ़ती। कोई खयाल

और जवाब नही होता । एक गर्म शलाका मेरी
चेतना पर लीक खीच देती है और मैं जहा का
तहा फिर कटे कटे खड़ा रह जाता हू ।

सुराज

[प्रधान मन्त्री के नाम एक खुली चिट्ठी]

नही, हम न्याय का नाम अब कभी नही लेंगे। (विरोध अन्याय की भाषा है।) यहाँ जुल्म औ' सितम कहाँ होता है। गम की छाया नही है। कोई दुखी — फटेहाल नही है। कही आग नही लगती; न किसी की दीवार ढाही जाती। हक़ बिना माँगे मिल जाता है।

वो जमाना नही रहा—जब आदमी आदमी का दुश्मन था—खून पीता रहता था। रावण सीता को उठाकर ले गया था। दुःशासन ने द्रौपदी का चीर हरण किया था। लंका मे आग लग गई थी। वीरान कुरुक्षेत्र पड़ गया था। आज किसी की माँ कही कैकेयी नही होती। फरीक दुर्योधन नही होता। कही कुन्ती नही होती— कोई कर्ण नही होता। भीष्म और द्रोण आत्महत्या कर चुके है। नमक हावी होकर किसीका मुँह नही सीता।

धरती हर जगह धरती है। सबकी है। सोना उगलती है। सबके ऊपर आसमान का साया है।

कल फिर

[[illegible]]

आज दिन
किसी बदनसीब बाप के हृदय-सा टूटा हुआ
बिल्कुल चुप है ।
सूरज किसी शरीफ मुजरिम सा
पश्चाताप की आग में जल रहा है ।
रात मे अचानक फेंकर उठी सियारिन सी
काम काज की आवाज
एक आतंक खड़ा कर चुकी हैं ।
खामोश देवभी के जड़ कानों से
मेरे अस्तित्व का प्रश्न
पहरुए के ठनकने-सा सहसा टकरा गया है ।
मेरे अहित की आशंका से
स्वप्न मे बेवा हो गई मेरी बीवी को काठ मार गया है ।
मेरे बच्चे
कुत्ते की गुर्राहट से कांप उठे खरगोश के बच्चो की तरह
नींद मे ही कांप उठे हैं ।
और मेरा 'मैं'
जिबह हुये बकरे-सा तड़प रहा है ।
क्या करूं ?
जहां खड़ा हूं उसके आगे

चुप

बहुत दिना बाद मैंने कल फिर एक सपना देखा मेरे खूँट पर वधी गाय बच दी गयी है। और सौदागर बछडे को यहाँ छोड गया है। (उसे दूध से मतलब था।) बछडा खाना पीना छोडकर भाँ भाँ कर रहा है। उसे देने के लिए घर म कुछ नही है। माँ दौड कर रसोई घर मे गई है। रसोई घर खाली है। 'भडार' पर ताला लगा है। और चावी नही मिलती ह।

दरवाजे पर टगे हुए पिजड़े मे पलने वाला तोता कही गायब है। मुझसे सुबह शाम बोलता-बतियाता था। अब सीताराम सीताराम' नही होता। नवीजी दाना भेजो'—कोई नही कहता। बच्चा के मुँह पर हँसी नही रह गई है। धामाचौकडी ब द है। घर दहशत मे आकर अधकार से अपना पता पूछ रहा ह, और अधकार (जल्लाद की तरह) चुप है।

सब एक दूसरे का मुँह देख रहे ह। मालिक के डर से कोई कुछ नही बोलता। न ही पूछता। मालिक कुदकशी की धमकी दे रहे है। पिछले कई दिना से चूल्हे मे पानी पडता रहा है। फिर भी कोई कुछ नही कहता। घर म अफन

किनारा

और यहां एक नदी आकर समाप्त हो जाती है मगर कोई संगम नही होता। पर्वत देखते रहते हैं और कितनी कितनी उपत्यकायें यू ही नगी पड़ी रहती हैं। उल्कापात होता है और रात की खामोशी में कोई फर्क नही पड़ता।

इच्छाये बेपनाह हुई रहती हैं। औरत का जिस्म बेभाव बिकता रहता है मर्दों की भीड़ मे। भाव सिर्फ सोना और चांदी और क्रीम और बिस्कुट का होता है।

दिन रोज की तरह आता है और मायूस लौट जाता है। सवेरे सवेरे रेंगती हुई आकृतियां शाम होते-होते कोई गुफा खोज लेती हैं। मगर वे गुफायें भी उन्हे शरण नही दे पाती, कि खुद ही फटेहाल हुई रहती हैं। (उनके लिए सूर्य का अर्थ उल्टा तवा होता है।)

फिर यह कितना बड़ा छल हो जाता है, कि रात और दिन में फर्क नही रहता; जो स्वर जन्म की खुशी मे उठता है वही मर्सिया मे बदल जाता है। आदमी बेहद प्यारा होता है और औरत बेहद खूबसूरत जो उनके दर्म्यान कोई जगल न खड़ा हो। (यू जङ्गल

मे भी हिरण और मोर होते हैं।)

मुझे कभी कभी उगते सूर्य से डूबता हुआ सूर्य ज्यादा हमदर्द लगता है। हर वक्त ऐसा नही होता कि अधेरे की सूरत म किसी जल्लाद की सूरत दिखायी पडती है। हत्याकाडो के इतिहास मे सिर्फ तारीखे बदलती ह नाटक एक ही चलता रहता है। (वे परियां होती है जिनकी कहानियां अच्छी लगती है।)

मैं डर जाता हू, जो कभी अ दर की खामोशी एक अस्पष्ट मगर खौफनाक आवाज मे बदल जाती है। वद हुई आखे घबडाहट म खुलती है तो कतार-की कतार रेगती हुई चीटिया नजर आती ह। यह काई साप होता है जो घसीटा जाता रहता है और जिसकी सास वे चाट गयी रहती है। (खामोशी का अर्थ हर वक्त खामोशी नही होता।)

जुगमन्दिर तायल

धूप-स्नान

एकांत
शीत-धूप में जन सोया है
वस्त्र उतार
और जन म आकाश
और पहाड़

एक पक्षी जगाने को उसे घुता है
फिर सहम
वापिस लौट जाता है

शब्दहीन, शीतल हवा
हल्के हाथों के स्पर्श से
सिहरा
आगे बढ़ जाती है

एक कौआ कांव कांव करता ह
और शरमा कर
चुप हो जाता है

बाँध की दीवार से
कोई एक
देखता ह रूप
आंख बन्द कर लेता है।

सूरज सब देखता है

सूरज सब देखता है
नीली खिडकी से।

हरी मखमल का एक बडा गलीचा
जिसमे पीली बुंदिया हैं
एक बडा गलीचा पीली मखमल का
जिसमे हरी बुंदिया हे
हर ओर गलीचे ही गलीचे
पीले और हरे
इधर, उधर, आगे और आगे
शीतल चाँदी की गोट लगी है
चारों ओर।

गलीचों के पार
धूप में चमकता विशाल दर्पण।

बीच-बीच में
ढीले कपड़े पहिन खडे पहरेदार
खबरदार
कोई हाथ लगाकर गन्दा करे नही।

अहा!
ये गलीचे तो जिन्दा भी हैं

कोई सितार धीरे से छू देता है
और [illegible]

[illegible]ली सूरज
नीचे उतर आया है किनारे तक।

शिरीष की गन्ध

शहर के बीच फूला है शिरीष का पेड़ बहती
है गंधभरी लहरिया।

सपाट चेहरों की भीड़ गुजर जाती है पसीने की
बदबू छोड़ ट्रक कार बस में जिंदगी दौड़ती है
नथुनों में डीजल की गंध भरे, हाथ टकराते हैं
जोश भरे बार-बार, अट्टहासों की गर्ज बिखर
जाती है। कोलाहल है बहुत—संस्कृति के नारे
संगीत की धुन, कला की नुमाइश ऊंचे से ऊंचे
उड़ते हैं कविताओं के शब्द। सिर्फ घोड़े सूंघते हैं
शिरीष की गंध, नथुने फुला हिनहिनाते हैं मस्त
हो। लगातार उड़ती है धूल हँसते हैं फूल
कोमल, गंधभरे।

शहर के बीच फूला है शिरीष का
पेड़ ।

शिरीष की गन्ध

शहर के बीच फूला है शिरीष का पेड़ वहती
है गंधभरी लहरियां।

सपाट चेहरों की भीड़ गुजर जाती है पसीने की
वदबू छोड़ ट्रक कार बस म जिन्दगी दौड़ती है
नथुनों मे डीजल की गंध भर, हाथ टकराते हैं
जोश भरे बार-बार, अट्टहासों की गर्ज विखर
जाती है। कोलाहल है बहुत—संस्कृति के नारे
संगीत की धुन, कला की नुमाइश ऊंचे हो ऊंचे
उड़ते हैं कविताओं के शब्द। सिर्फ घोड़े सूंघते हैं
शिरीष की गंध, नथुने फुला हिनहिनाते हैं मस्त
हो। लगातार उड़ती है धूल हँसते हैं फूल
कोमल, गंधभरे।

शहर के बीच फूला है शिरीष का
पेड़ ।

देखता है नये-नये रूप

नये-नये वेश

महादेव के आसन (कैलाश-गुज) से

टकराती हैं नये-नये नारों की प्रतिध्वनियाँ।

युवा हो गया है शहर।

पुरानी स्मृतियों पर पर्त चढ़ती हैं

आकर्षण नये का है प्रबल बहुत

बाँह का सहारा छोड़

पूर्व को मदानों में

बढ़ता जाता है शहर।

सेतु

कहीं खिला होता है एक गुलाब
और उड़ती होती है एक मधु मक्खी
हवा की एक तरंग मैं
दोनों को मिलाता हूँ।

बन्द कमरे की किसी खिड़की पर
बैठा होता है उदास
कहीं एक आदमी। और
विजन में भटकती होती है
एक शिरीष गन्ध
दोनों से निस्संग मैं
दोनों को मिलाता हूँ।

आकाश में छुपा होता है
किसी बादल में कहीं एक अर्थ
धरती पर भीड़ में
भटकता होता है कहीं एक शब्द
अभिव्यक्ति का एक रंग मैं
दोनों को मिलाता हूँ।

पलायन

कल मैंने तय कर लिया था कि अब
कविता नही लिखूँगा और बिस्तर
पर निश्चेष्ट लेट गया था।

फिर हुआ यह कि सूरज की किरनें
आई और रोशनदान से झाँककर
लौट गई। फिर हुआ यह कि हवा
आई और बोली मैं तुम्हारे पास नही
आऊँगी। फिर हुआ यह कि तारो पर बैठ
सारे कबूतर चिपक गये और उलटे
लटक गये। फिर हुआ यह कि कमरे के
दरवाजे बन्द हो गये और सड़क पर चलते
लोग जमीन में धस गये फिर हुआ यह कि
सारे पलाश बदरङ्ग हो गये, सारे अमलतास
जल गये और ठूठ हो गये।

तब कमरे ने मुझसे कहा अब तुम असलियत
पहचान जाओगे। चौराहो पर वनमानुषो की
भीड है। बिजलियाँ आँखो की पलक चबाती
है। शब्द मस्तिष्क की धमनियाँ काटते है। हर
सडक का अन्त चर्बी का पहाड है।

तब अँधेरे ने मुझ से कहा। अब तुम असलियत

रचना से पूर्व

इतनी बड़ी दुनिया और
अकेला मैं।

आकाश-छूते अनगढ़ पहाड़ों की तलहटियों से
गुजरती अंतहीन निर्जन पगडण्डियाँ। पगडण्डियों
के किनारे खड़े खामोश वृक्ष। जलते रेगिस्तानों के
बगूलों में किसी हरे वृक्ष की छोटी सी छाँह नदी
की किसी पतली सी धारा की खोज। अछोर नील।
आसमान और उसमें घूमते भीमाकार ग्रह जलते
सूरज, धूमकेतु नीहारिकायें और इन सबके बीच
भटकता अकेला मैं।

फूलों से भरे हजार वन और हर वन अपने में
अजीब हर फूल का अलग रंग हर फूल दूसरे
से जुड़ा हुआ मिला हुआ। गुलाब की पंखड़ियों में
एक दल कमल का, अमलतास के गुच्छों में
गुलमोहर के रंग शिरीष के कोमल तंतुओं में
मोगरे की गंध और इस सब के बीच रास्ता
खोजता परेशान मैं।

सीमाहीन समुद्र पर अनुपम असंख्य नीली-हरी लहरें
हर लहर दूसरे से टकराती अलग-अलग बढ़ती
और फिर-फिर टकराती, सब कुछ विच्छिन्न ग्रंथित

अस्पष्ट, उलझा हुआ और इस पर भी पारदर्शी
लहरों में भभकते, बार बार भभकते और बार
बार डूबते उतराते, चमकीली मछलियाँ
और जान लिये लहर-लहर पीछे दौड़ता-हाँफता
बेचैन मैं।

प्रक्रिया

उस समय तो सिर्फ मैं ही होता हू ।

कि तु उससे पहले होता है एक तालाब और मैं
लहरें गिनता होता हू सोचता होता हू उनकी
चचलता उनकी शीतलता उनकी तरलता इत्यादि
सोचता होता हू मैं भी तालाब होता मैं भी तालाब
होऊँ (तो कैसा रहे)

फिर मैं तालाब होता हू लहरें होता हू चचलता
शीतलता तरलता होता हू । फिर पता नहीं (कैसे)
कितने तालाब होता हू कितनी लहरें होता हू
कितनी चचलता शीतलता तरलता इत्यादि होता
हू ।

फिर कुछ नही होता है । सिर्फ मैं ही होता हू
मुझमे ही होते हैं तालाब लहरें, चचलता
शीतलता तरलता इत्यादि ।

और रुकके अन्त मे कुछ शब्द होते हैं (वे बहुत
दूर से आते हैं) और मैं सबको दे दिया जाता
हू ।

अस्तित्व

(रचना के बाद)

एक आकाश मेरे चारो ओर फैला है एक
गंध मुझे सब ओर से घेरती है, दूर चमकता
है एक पुराण-सूरज, हाथ भर के फैलाव मे
हँसता है एक छोटा फूल, एक शब्द मुझे
सबसे जोडता है ।

यह नही कि सिर्फ आकाश में हू । आकाश में
हू और उसे बनाता भी हू गंध में हू और
उसे मादकता भी मैं ही देता हू ।

यह नही कि सूरज सिर्फ दूर चमकता है, किरने
मुझ तक भी आती है मेरे रक्त को उष्ण करती
है मेरी आखो को प्रकाश देती है । और फूल
भला उसे मैं कैसे भूल सकता हू क्योकि उसकी
हँसी के लिये ही तो लिखता हू ।

सो आकाश मे हू गंध में हू, सूरज और
फूल में हू और इनसे ज्यादा भी मैं हू ।

जिन्दगी

मौत कहाँ नही हैं ?
बिजली के तारो पर झूलती ह मौत
ट्रकों मे गुराती दौड़ती है मौत । लोह
की पटरिया पर चिघाड़ती ह मौत
कहाँ नही ह मौत ?
सड़क बीच मौत ग दे गड्ढे मे छुपी
ह, कैमिस्ट की शीशियो मे मौत
लाल हँसी हँसती ह, चमकती कार मे
गद्दा हर बठ मौत सफर करती ह
नही ह कहाँ मौत ?
मौत बिजली के स्विचो मे इन्तजार
करती है । मौत पाँचवी मजिल की
खिड़की से झाकती है । मौत लाल
फायर बिग्रेड की घंटी बजाती ह ।
है कहाँ नही मौत ?
और जिन्दगी
इस सबकी उपेक्षा करती, इस सब
पर हँसती, इस सबके बीच भागती
रहती है जिन्दगी ।

लावा

[छात्र आंदोलन के संदर्भ में]

कितने दिनो से गरम लावा धरती की भीतरी दरारो मे
भटक रहा है।
इन दिनो लावे की एक परत बाहर फूट आई है और
उसे रास्ता देने का सडके खाली होगई हैं बाजारो ने
आँखे ब द करली ह, सीमेन्ट की दीवारो ने जगह छोड
दी है, लोह के खम्भे काँप उठे ह, लाव का कर्कश
शोर सुनकर सगीत रुक गया ह, पारदर्शी शीशे दरक
गय है, रगीन शब्दो से भरे पोस्टर उतर गय हैं,
गलिया अजीब कर्कश नारो से भर गई ह।

वे लोग ऊची गद्देदार कुसियो पर बठते है और कांच
की खिडकियो से सारी दुनिया दखते है। उ हाने कह दिया
है कि यह महज कानून और व्यवस्था की समस्या है
लाठी के चन्द मजबूत हाथ आँसू गस के थोडे से गोले,
लाहे की नलियो से निकली शीशे की च द गोलियाँ सब
ठीक कर देंगी और उ होन अपनी खिडकियो के मोटे
परदे गिरा लिय है।

इस बीच लाव की आग बढ़ती जा रही ह, वृक्ष और
फूल, पानी से भरे फव्वारे, सगीत और साहित्य के
प्रसारण-केंद्र आग मे सुलग रहे ह।
उन्हे इन सब की शायद चिता नही है। फव्वारे व फिर से

बना लगे, सगीत और फूलो के बिना काम चला लेंगे
ये किसी को भी जरूरी चीज बिल्कुल नही है
और लावे की आग थोडी देर म अपने आप बुझ
जायेगी।
पर कल क्या होगा? लावा तो अभी और भी है जो
धरती की भीतरी दरारो म भटक रहा है या कि बाहर
आने को कसमसा रहा है। धरती की परत कमजोर
हो गई है, अगर वे कल फट गई तो क्या होगा?

कैक्टस-कथा

[[illegible]]

शहर से बाहर पहाड़ी की एक ढलान पर एक कैक्टस
पता नहीं कब उग आई थी। हम कभी कभी महत्वपूर्ण
कल्पनाओं से अवकाश मिलने पर उधर घूमने जाते थे।
उस कैक्टस पर भी कभी-कभी हमारी दृष्टि पड़ी थी—
जब हमारी आँखें इधर उधर घूम सी रही होती
थी, वह आँखों की राह में अटक जाती थी। हमने उसे
सदैव उपेक्षणीय समझा था—काँटों भरी एक व्यर्थ
झाड़ी अनुपयोगी, अर्थहीन। वहाँ अनेक सुन्दर वृक्ष
थे और कितने ही कोमल फूल थे उनके बीच उसकी
हस्ती ही क्या थी जो हम उसे महत्व देते। हाँ हमने
कभी-कभी उसमें फूल भी देखे थे। वे फूल हमें
पसन्द नहीं आये थे।

वह कैक्टस कुछ अजीब थी। बावजूद हमारी सब उपेक्षाओं
के वह बढ़ती रही, दिनों दिन भारी
और लम्बी होती रही उसके
फूल भी बढ़ते रहे पता नहीं कौन उसे पानी देता था हमने
तो कभी दिया नहीं। हमें ताज्जुब था कि हमारी उपेक्षाओं
ने उसे सुखा क्यों नहीं दिया, उसमें फूल आने बन्द क्यों नहीं
हुये। फिर हमने उधर ध्यान देना ही छोड़ दिया हमारे पास
अपने बहुत महत्वपूर्ण कार्य थे और अवकाश के लिये

सुन्दर वृक्ष तथा कोमल फूल थे।

एक दिन किसी ने कहा था कि
वह कैक्टस सूखने लगी है। यह
समाचार महत्वपूर्ण नही था।

लेकिन हुआ यह कि एक बड़े आदमी ने (जिसके प्रति हमारे दिलो मे बहुत जगह थी और जिसकी पसन्द-नापसन्द का हम बहुत ध्यान रखते थे। उस पहाड़ी ढलान से उठवा अपने कमरे मे लगा लिया और उस पर बहुत कुछ खर्च भी किया। हमने उसके महत्व को तुरत पहिचाना और बार-बार उसे देखने गये, उसके रोग पर चिन्ता प्रकट की और उस बड़े आदमी की तारीफ की कि वह इतना सदाशय हो रहा था।

अब वह कैक्टस सूख कर मर गई है। वह आदमी भारी प्रयत्नो के बावजूद उसे बचा नही सका। हम इस चिंता मे है कि अब हमारा रुख उसके प्रति कैसा होना चाहिये, उसकी ज्यादा तारीफ कही हमारे कोमल फूल और सुन्दर वृक्षो के लिये नुकसानदायक तो नही होगी।

युद्ध के बाद का शरद

आकाश इन दिनों बहुत स्वच्छ हो गया है, मुझे
आकाश को ओर देखते डर लगता है । धरती पर
इन दिनों बहुत फूल खिल गये हैं मुझे फूलों की
बात करते सकोच होता है । कमल भरे ताल
मधुमक्खियों के गुंजन से भरे गये हैं मेरे कानों
मे कुछ और भयानक आवाज गूँजती है ।

नीले आकाश मे चील बहुत-बहुत ऊपर उडती
है मैं हवाई हमले के सॉयरन की प्रतीक्षा करने
लगता हूं । धूप मे घूमने को इन दिनों बहुत मन
होता है मुझे दूब भरे मैदानों की जगह खाइयाँ
याद आती हैं । वर्षा-धुली कानी शिलायें धूप मे
चमकती हैं, मुझे मोम टैंकों का भ्रम होने लगता
है । जगली नालों के पुलों नीचे बहते दर्पण से
स्वच्छ पानी मे प्रतिबिम्ब देखने को बहुत मन करता
है स्याह पडे खून की धाराये प्रतिबिम्ब तोड देती
है ।

रात भर इन दिनों हर सिंगार झरता है बारूद की
गध मेरे स्नायुओं से निकल नहीं पाई है । चांद की
रोशनी बुरी लगती है अधेरे मे रोशनी जलाते
हाथ हिचक जाते हैं । रात मे अब तारे नही देखता

हूं, गिरती उल्कायें कुछ और स्मृतियां लौटा लाती
हैं।

युद्ध फिलहाल चला गया है पर नहीं, युद्ध
एक बार आकर कभी वापस नहीं जाता है।

विजय के बाद

विजय का मुकुट मेरे सिर पर चमकता है
माँ। एक और युद्ध जीत मै आया हू
मुझे अपनी गोदी मे छुपालो।

गुलाब के कुजा मे बारूद के शोले सुलगाये
बच्चो को क्रिनकारियो की विस्फोट के धमाक से दुलाया
हर एक को शक की निगाहो मे देखा, मैन
सत्य का सिर्फ अपने साथ साथ समझा
घृणा को सबसे बडा आदर्श मान
अस्तित्व की सार्थकता रक्तरजित तलवार मे समझी, मैन
जिनसे मै परिचित नही था
जिनकी शक्ल नही देखी थी कभी
उ हे अपना शत्रु समझा प्रहार किया
(राष्ट्रहित यही कहता था)

गर्म खून से चिकन बन रास्ता से गुजरता
मानव-अस्थियो स उठे सेतु पार करता
निर्जन बस्तियो के स नाटे मे जयनाद सुनता
मा। मै युद्ध जीत तुम्हारे पास आया हू
मुझे अपनी गोदी म छुपालो
केसर क्यारियो म सुरग बिछाने वाले पहले हाथ
मेरे नही थे

चीड़वन को मेरे टैंक की काली सख्त जजीर न
पहले नही रौंदा था
बर्फ के सफेद स्फटिक फर्श पर
आदमखोर जानवरो के पजो की छाप
मेरे पजो की छाप नही थी
पर कुछ लोग कवल युद्ध की भाषा समझत है
(यह कैसी विवशता है—मैं क्या करू माँ)
और युद्ध आने पर
किसी शब्द का कोई अर्थ नही रहता
गहरी घाटियो में गूँजती
सिर्फ एक दर्दनाक चीत्कार रह जाती है
(यह कैसी विडम्बना है)
मां ! एक और युद्ध हार
(युद्ध म दोना ही पक्ष हारते है)
मै तुम्हारे पास आया हू
मुझे अपनी गोदी में छुपालो ।

अजित पुष्कल

देश

सिर पर ओढ़े बर्फ़
परों म समुद्र
पहाड-सी कठोर नग्न छाती
बाँहे पसार
जैसे ईसा टगा हो सलीब पर।
इसके जेहन मे रगते लोग
काला लबादा पहन
मेरी रीढ़ पर
यात्राएँ करते ह
फिर भी—
मैं सार देश को
मुट्ठी मे नही,
हृदय म रखता हू।

अक्षर अवशेष और आयाम

हम नवानुदित मानवता अनुष्टुप के
अक्षर हैं भाव भरे
मूल से टूटकर बोलते हैं
क्योंकि हम नये मूल्य
नये मान, अक्षर हैं
समय की मसि के
ईप्सित चित्र हैं।

हमारे नियता मर चुके
सब साक्षी हैं
वे मानसिक चूल्हों के जन्मदाता
अपराधी थे
आज का युग उन्हें ठिगना दिखाता है।

अब हम धनधनाहट सुनते हैं
दिशाओं की
पृथ्वी के पृष्ठों पर
उभरने लगे हैं
क्योंकि हम अक्षर हैं
सत्य के धरातल की ईंट हैं
सत्य का सत्य से जुड़ाव हैं।

अभिव्यक्ति

अवसाद की लाली लपेट
काले समुद्र तट पर
खड़ा है सूर्य।
शाम हो गई है
घाटियों मे झुके हैं
अँधेर के दलदार वृक्ष
छाया गुनाब मूछित है
एक काला भारा
कगारा से टकरा रहा है
एक सफद पर का भरना
चट्टाना की बाँहो म
फडफडा रहा है।
मैं घाटी को हृदय मे धर
जी रहा हूँ यहाँ
कोलाहल मे।
विवर मुख खण्डहर क
प्रवेश द्वार पर, उ मन
एक ज्योति पुञ्ज की ताक मे
आँख सिभा रहा हू।
घाटी मुझे गरमा रही है
मेरा विराट—
अभिव्यक्ति में बदल रहा है

अभिव्यक्ति शब्दों में
शब्द लय में
लय मुझ में

समय

कोई फुफकारे
उसकी गर्म आहट मिले
पर वह न मिले
कंठो मे घिसटती आवाजे
फस फसकर निकले
लड़खडाकर बेहोश हो जाँय
हूक की आँख फटे
और रोशनी की चमक मीनार ढह जाय
चुपके नस्तर सा चुभे
और बद रक्त
नलो के सहारे
दूसरे की बाहु मे वह जाय
बिस्तर से खटमल उछले
और आखो म चुभ जाँय
स्त्रिया बलि का बकरा जन्मे
और बच्च के प्यार को तरसे
पिता हताहत हो
गालियां दे, उछले
सिरहाने दान की रोटियां
गध दें, नाक फाड़े
और उन्हे भी चूहे खिसका ले जाय
फिनैल की गध से फर्श गमके

प्रतिश्रुत पोद्दो

छत के तले छिपकलियां पलें
आपस में लड़ें
बरामदे में पूत चरमरायें
कलफा कपड़ा की तरह टूटें
नींद पर बदरवारा खुशियां टहलें।
समय जितना बड़ा अस्पताल है आज
जो निर्जन अँधेरे में
बीमारों का घर
उम्र की दीवारों पर खड़ा है।
जहाँ धरती छोटी,
आसमान नंगा है
पागलों का सिर फुटौवल
बनौस दगा है।
यहां अपनी ही पीड़ा पनपती है
किसी की अंगुलियां जख्मी हैं
किसी का सिर अधकटा है
फिर भी मालूम नहीं
कहां किसकी दवा है।
बस, वंचना की राहत है
वैसे सब आहत हैं।
गिद्ध सूंघ रहे हैं
अस्पताल का छप्पर
उनकी दार्शनिक आंखें
मृत्यु के इंतजार में
आशीषों का सुख बांट रही हैं
पंजे सहला रहे हैं
चोंचों में स्वाद पनप रहा है

कितना भारी अपशकुन
सिर पर खड़ा है
कौए गालियां बक रहे हैं
बीमार अपनी पीड़ा में जूझ रहा है।
डाक्टर नर्स के साथ है
दाता दान देकर चला गया
हिफाजत के लिए
सिर पर
जल्लाद समय सवार है।

ईश्वर

ईश्वर के नाम पर
सन्त्रस्त है दिक् और काल
सारा का सारा वर्तमान।
उस अखड तत्व का
एक एक टुकडा जबडो मे दाबे
चौराहो पर लडते है लोग
कुत्ता की तरह उत्तेजित
भूकते है धर्म युद्ध का आह्वान।
ईश्वर अगर युद्ध है
तो मै नही मानता
नही मानता इसे
कि स्मरण मात्र से
आतरिक प्रकाश पुञ्ज
बन जाय खून का तालाब
और मुरदा की गध से
फटने लगे ब्रह्माण्ड
स्वार्थ और सत्ता के लिए
ईश्वर अगर युद्ध है
तो मै नही मानता
नही मानता
इस शव साधना को नही मानता।
मुझे उन आत्मज्ञानियो से घृणा है

जिन्होंने बिना सोचे
ईश्वर के अस्तित्व को
युद्ध अधम सत्ता और
व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए
विज्ञापित किया
उसके स्वरूप का शव
अंधेरे में
आकाश से पृथ्वी तक
टांग दिया।
लोगों ने थोड़ा थोड़ा
उसे बांट लिया
जैसा चाहा
वैसा प्रयोग किया।

एक शाम

तट पर सन्नाटा,
हाथ में खाली वंशी
डूबते सूर्य की रोशनी
गटक कर मछलियाँ
समा गई धार में
अजीब है आंख
सामने सब घटने दिया

आवाज

मौन तो आवाज है मेरे हृदय की
जम गई है ।
जिसकी तहों में
स्वास का इतिहास
बारूदी कुहासे ढक गया है ।
मेरी अगुलियाँ जली है
जलती गई हैं
अभी भी उस आंच में
वे तच रही है ।
दर्द की हर चीख
कविता बन गई
तो क्या करूं मैं ?
विगत मेरी पीठ पर है
गड़ रहा है
दृगो पर ज्यों मान काला
चढ़ रहा है
मेरी पीठ पर कितना लदेगा ।
यह समय है
कि बिन्दु से कुछ दूर जाकर
मैं स्वयं को खोजता हूं ।
तड़प दबकर कांध उठती
आग जो अन्दर बसी है

जो अंगुलियाँ नहीं
आनत भय जलाना चाहती हैं ।
इसने हृदय को तृप्त कर
धरती रची है ।
सूर्य का अवतार
देने के लिए
ऊषा रची है ।

(२)

आग है वह
रात का पिछला पहर है
मैं अकेला
जैसे निरा नव दीप्त तारा
लुप्त होने से बचा सा
नील नभ के एक कोने
ठठ गया हूँ ?
कौन अपनी,
नील आभा पी गया हूँ ।
पेड़ सारे मौन
चिड़ियाँ छिपी बैठी
सूनी सड़कों का नगर
मेरी दृष्टि का अट्टहास
इन पर नहीं खुभता
न इनका रंग
मेरे नयन चढ़ता ।
एक कोने—

बिल्लियां फुसकारती हैं
यही सह अस्तित्व
मैंने सुना
सब डर रही, गुर्रा रही है
स्वयं को छोड, सब से।
छींका बहुत ऊंचा नही है
दूध पीने को
बड़ी इतनी लड़ाई
कहे तो मैं दूं हे
ऐसे ही पिला दूं
पेट मेरा भर गया है
इसलिए कि खून अपना ही पिया है।
वक्ष पर बैठी हुई ओ बिल्लियो
नीद मत तोडो किसी की
चौपाये नही
नर सो रहे हैं
पालतू कुत्ता
जिसे मैंने खिलाया दूध रोटी
वही मूरख
किसी ऊंचे मंजिले पर सो गया है।

(३)

अभी है कुछ रात
गजर का घंटा बजा है
सुन रहा काली सड़क पर
फुसफुसाते है बहुत पदचाप

काठा से उतर कर
जा रहे कुछ लोग
अ धी गली मे भागते चुपचाप
काली शिला पर
रोशनी की दूब कचरी जा रही है।
भीगुरा का खुल गया विद्रोह
यही मेरा मन
काले श्याम-पट पर
युग वोध का
दुर्बोध पोस्टर लिख रहा ह ।
और कब तक
कोठे खुले खुलते रहेगे
और कब तक
बिल्लियाँ सोने न द गी
और कब तक
पालतू कुत्ता
तितल्ले पर रहेगा
और कब तक
खाज म अपनी
मु े जगना पडेगा।
और कब तक
काली शिला पर
रा नी मूछित रहेगी
प ी गत इति ास के व तक
म न पत्तों के तले
ि टके पड़
ौर नी फिर महिरो

जला डाली हैं अँगुलियाँ
अब मौन भरसक तोड़ दूंगा
घन घनाकर।

प्रत्याशा

हम किसी टोह मे
जिन्दगी के हर क्षण
जला देते हैं।
हम चमकीली मछली पाने के लिए
खारी गहन समुद्र मे
जिन्दगी का मजबूत जाल
लटका कर मड़ा देते हैं।
फिर वह जाल—
संसार के म्यूजियम मे
उलझाकर टांग दिया जाता है
हम निकम्मे करार कर दिये जाते हैं
कोई मछुआ उनकी कीमत नही आंकता
हम इतिहास की कडी से
तोड दिये जाते हैं।

छलावे की प्रतीक्षा

अपने को छलते हुए
दो ही दिन हुए थे कि
मोमबत्तियाँ
पिघलकर जम गईं फर्श में
रात अपने वस्त्र समेट
देहरी से अटकी
फिर गिर गई।
उसकी पीठ पर
किरणों का फानूस
खनखनाकर टूट गया
हवा उसे घायलों के अस्पताल
तक छोड़ आई।
तब से सूरज चाँद की
मटमैली छायाएँ
आकाश में भटक रही हैं
रंगीन गैस के गुब्बारे
थोड़ी दूर पर ही फूट गये
कबूतर पंख फड़फड़ाकर
महलों के बुर्ज पर कांपने लगे
पूरा मजमा उठ गया
आसमान कोलाहल पी गया।
कांपने लगी डोरियाँ रेशम की

स्वागत पट पलट गया ।
पहाड़ के नीचे
चीखता है सन्नाटा
साजा का दर्द
समा गया खोखले शहर में ।
शहर के दो छोर
पीड़ा से काँप रहे हैं
पालतू जानवर नदी पार कर
बस्तियाँ ढूँढ़ रहे हैं
काले हरे लाल
विचकौने झंडों में
खून के छींटे उभर रहे हैं
कुहासे की भाप
पंडाल तक बढ़ने को उठ रही है
मैदानों में कुत्तों के मन में
भूँकने की ललक उठ रही है ।
लगता है
एक और नए उत्सव के लिए
अपने को
दो दिन तक और छलूँ ।

कितना घृणित है

कितना घृणित है
किसी को सूर्य कहना
और फिर उसी की आंच में दहना।
इतिहास के फंदे में फँसा कर गला
मैंने भी देखा है सूर्य
जिसकी सहस्र तेजाबी किरणों की
ऊष्मा से त्रस्त
लोग आपस में फिर टकराते
एक दूसरे के माथे पर
खून की अल्पनाएँ बनाते हैं
शक्ति के लौह नखों से
धरती कुरेद बो देते हैं
यश और शील के विषैले बिए।
विष की फसल उगती है
वही हम लोगों की हाँडी में पकती है
उस विष से पला मेरा शरीर
बहुत झुलसता है
दाता सूर्य के रहते
विष और गर्म होता है
कलेजे में उतरता है
शिराओं में रचता है अग्नि-पथ
उबकाइयों से भरा रहता है मन।

अँधेरा कहो भला है इस सूर्य से
जहाँ लोग विना एक दूसरे को देखे
विष वमन करते हैं
किसी घबड़ाहट-वश।
छिपकलिया छटपटा कर पटकती है पूछ
कलरडरो पर कीडे देते हैं टोचे
दुर्गंध के टीले पर बठे
भी गुरो का कनसुरा साज
टकराता ही रहता है कानो मे।
मल की बदबू से फटती है नाक
म थे पर उभरता है टाकता दद
दिल म वेचैनी का फुत्ता
खुजलाता है घाव
पनको के नीचे जलते है अलाव।
फी ये कपडे सा ऐ ठता है शरीर
बढ़ता है तनाव
न शहर न गाँव
न औरत का चेहरा
न हाथ न पाव।
सचमुच तब सवेदनाएँ
खराद पर चढ़ी
यथाथ बाध को
चिनगारिया फकती है
कहो कुछ देखने को
बचा खुचा सहेजने को
यदि हम स्मृतियाँ न बुए
विचारो मे न जिएँ

तब न जाने कब मर जाय
इन्हीं के बल
चौराहे के बीचोबीच
हम इतिहास रचते हैं
सलीब की कलम से।

(२)

मैं उंगुलियों में फँसा कर सलीब
मुर्दे जगाने के लिये
खोदता हूँ मकान की नींव
क्योंकि यह
उन्हीं की छाती पर खड़ा है
ढहेगा, मुर्दे फिर बोलेंगे
मसीहे नहीं,
क्योंकि वे मौत को वरते हैं
और आराम से अमर रहते हैं
सच्चा मुर्दा, मौत नहीं
जीवन वरण करता है
उसे मौत दी जाती है
न्याय की आंख बचा कर
रोज थोड़ी क्रमश:
उनकी गजी खोपड़ी में
दाता जलाता है चूल्हा
पेट से अधिक खा कर

सोफे पर सोता है ।

सुबह शाम वे भिनभिनाते हैं
उसके बीमार घोडे के जबड़े के पास
जिसके सामने ढेर सा अन्न होता है
जो बहुतो के पास नही होता ।
उसे शहर की शिराओं मे
विशाल इस्पाती वैभव को सूंघते हुए
दौड़ना पडता है कुत्ते सा
कभी अकले, कभी हजारो के साथ
कभी नींद कभी जग कर कटती है रात
मरने के लिए इतना ही बहुत है
इसीलिए लगता है—
कितना घृणित है किसी को सूर्य कहना
फिर उसी की आंच मे दहना
मुर्दे बन रहना ।

यद्यपि जानता हू
बड़ा ही कठिन है
मुर्दों को जगाना
धरती राख से ऊपर उठा
शुद्ध हवा मे सुखाना
ककालो का शो केश में सजाना
चौराहा पर टागना
पोस्टरो में आंकना ।
क्योंकि मैं प्रसिद्ध कर्मकाडियो
और रक्त-शोषक जाकों की साजिश ने
उन्हें गहरे उतार
पर्त दर पर्त से ढका है

एक भव्य नगर रचा है
जहाँ उनके आत्मज बिलबिलाते हैं
मंत्रसिद्धि के असफल प्रयास में
कुंडलिनी कुचल, साँस रोक

खून उगलते हैं
अपने को घूँटते हैं
मुर्दे नहीं, मसीहा बनते हैं
चूहों सी संतान उत्पन्न कर
बाँबी के मुहाने में बिठा देते हैं
लपलपाती आँच में
अलग अलग सूखने देते हैं।
कितना आत्मदाह
कितनी कस-मस में
उबलता है अनेकों का जीवन
एयर कण्डीशण्ड खजाने के इर्द-गिर्द
गिरवी धरा जीवन

पदाघातों के बीच
दूब सा उगा जीवन
गर्म तारकोल सा बिखरा
और दायरों में लिपटा जीवन
यंत्रों की कीट सा गुँथा-सना जीवन
जयध्वनि के बीच
हाहाकार और पराजय का जीवन।
फिर भी उखाड़ कर देखो जमीन
कहीं धूप से बची अपनी चिनगारी मिल जाय
माथा मारो, शायद कुछ टूट जाय।

सूर्य को श्मशान की चिता कहो
क्योंकि बहुत घृणित है
किसी को सूर्य कहना
फिर उसी की आँच मे दहना
थोडे दिन रहना।

राजीव सक्सेना



हम जीते हैं मृत्यु-भय लिये।
अराजकता ढल जाती है स्वयं एक व्यवस्था में,
अचेत हम रहें तो
धारण कर हिंस्र रूप,
सचेत हों तो शांतिपूर्ण रूपान्तर।

रूपान्तर दर्पण में हर बार,
नये सिरे से अपने से पहचान,
अपने से बातचीत बन गयी लोगों से बात,
और लोगों में भाषण
बना अपने से सम्भाषण,
भीड़ में अकेला मन अकेले में अन्दर
असख्य चेहरों की भीड़ एक नीड़ सा मिला
किसी स्वर को झकझोरती भीड़ में
और मौन लगता है प्राण तक
क्षण-क्षण जीना और क्षण-क्षण मरना
कभी बन जाना है सदियों के आर-पार
शाश्वत अनहोना कितना सहज है
रूपान्तर सदियों का क्षण में और क्षण का
वर्षों और सदियों में
एक जिन्दगी का कई जिन्दगियों में
और कई जिन्दगियों का एक जिन्दगी में।
काल एक सुविधा का माप है
हमारी गति का मान कोई ⁄ ।

हम हैं जो अस्तित्व का ताप
बन जाते हैं अरूप भाव,
हो जाते हैं क्षण जाते

बून्द-बून्द करा-करा मे
और अंकुरित आंख फाड फिर रो पड़ते है
अस्तित्व का ताप सह दह कर
सार्थक था ताप या ठण्डापन ?
दोनों एक-दूसरे के बिना है असम्भव दोनों का
एकात्मिक सयोग शायद सार्थक है।
वृक्ष शीश अंकुर के लिए ही तो जीते है।
गुलाब हो या केक्टस
अपने न है से गमने मे अपना ही यश है।
जीवन का समस्त अर्जित फल
छोड़ जाना चाहते है हम उस शिशु के रूप मे
जिसने हमे विवश कर दिया
फल खाने के लिए वर्जित से वर्जित।
वर्जित फल क एक ओर सर्वशक्तिमान
और दूसरी ओर नग्न वृत्तियां—
खोने क लिए नहीं है जिनक पास कुछ भी
पाने को एक दुनिया है नई
स्वय एक सृष्टि व स्रष्टा व विश्वामित्र।
वर्जनाओ के प्रति सदा विद्रोह
सहज स्वभाव है नित नयी सर्जनाओ का।
स्वर्गिम उपवन मे
आदिम आदम और कॉफी हाउसो मे
बैठी हुई आज की पीढ़ी—
शैतान साँप की भाषा न भाक रहे है
अपने अन्दर को भूल गो प्यासी
तीन सौ पैंसठ लेपिथेथन आंखो स,
फिर कोई नया फल फिर कोई नया फल।

हम जीते हैं मृत्यु-भय लिये ।
पराजकता टल जाती है स्वप्न एक अवस्था में,
अचेत हम रहें तो
धारण कर दिव्य रूप,
सचेत हों तो शांतिपूर्ण रूपांतर ।

रूपांतर दर्पण में हर बार,
नये सिरे से अपने से पहचान,
अपने से बातचीत बन गयी लोगों से बात,
और लोगों में भाषण
बना अपने से सम्भाषण,
भीड़ में अकेला मन अकेले में अंदर
असंख्य चेहरों की भीड़ एक नीड़ सा मिला
किसी स्वर को झकझोरती भीड़ में
और मौन लगता है प्राण तक
क्षण-क्षण जीना और क्षण-क्षण मरना
कभी बन जाता है सदियों के आर-पार
शाश्वत अनहोना कितना सहज है
रूपांतर सदियों का क्षण में और क्षणों का
वर्षों और सदियों में,
एक जिंदगी का कई जिंदगियों में
और कई जिंदगियों का एक जिंदगी में ।
काल एक सुविधा का माप है
हमारी गति का कारण कोई नहीं हम हैं ।

हम हैं जो अस्तित्व का ताप सह दह कर
बन जाते हैं अङ्कुर भाव
छू लेते हैं आसमान बरस जाते हैं ठण्डे मन

बूँद-बूँद कण-कण मे,
और अंकुरित आख फाड फिर रो पड़ते है
अस्तित्व का ताप सह दह कर,
सार्थक था ताप या ठण्डापन ?
दोनो एक-दूसरे के बिना है असम्भव दोनो का
एकात्मिक सयोग शायद सार्थक है।
वृक्ष शीश अंकुर के लिए ही तो जीते है।
गुलाब हो या केक्टस
अपने न हे से गमने मे अपना ही प्रश्न है।
जीवन का समस्त अर्जित फल
छोड जाना चाहते है हम उस शिशु के रूप मे
जिसने हमे विवश कर दिया
फल खाने के लिए वर्जित से वर्जित।
वर्जित फल क एक ओर सवशक्तिमान
और दूसरी ओर नग्न वृत्तिया—
खोने के लिए नहीं है जिनके पास कुछ भी
पाने को एक दुनिया है न । पर
स्वय एक सष्टि व स्रष्टा व विश्वामित्र।
वर्जनाओ के प्रति सदा विद्रोह
सहज स्वभाव है नित नयी सर्जनाओ का।
स्वर्गोपम उपवन मे
आदिम आदम और कॉफी हाउसो में
बैठी हुई आज की पीढ़ी—
शैतान सॉप की आगो । माक रहे है
अपने अन्दर की भूखी प्यासी
तीन सौ पैंसठ नेविथेयन आंखा स
फिर कोई नया फल फिर कोई नया फल।

स्याग कहाँ [illegible] शाप, [illegible] को
[illegible] के [illegible] में।
[illegible]
और [illegible] अन्दर
[illegible] स्मारावर्तक
[illegible] बैठा [illegible]।
[illegible] पश्चात् [illegible]
[illegible] गतिरोध।

गतिरोध की चट्टान पर पछाड़ खाती हुई,
टूटती [illegible]
[illegible]
लेकिन [illegible] टूटे हुए कणों से
[illegible] साथ मे
अपनी [illegible] जाते [illegible] को
वे चट्टान [illegible] जाती [illegible] दिशा बोध,
[illegible] और कोई चिह्न नहीं होता
चट्टान [illegible] हुआ [illegible]
और [illegible] हमारे ही अन्दर हैं।

अन्दर [illegible] जो दुनियाएँ
वे बोलने हुए [illegible] से जुड़ी हैं बाह्य जगत से,
[illegible] से उनके द्वार
[illegible],
द्वार पर द्वार द्वार पर द्वार
द्वार पर द्वार [illegible] द्वारों के द्वार
वे [illegible] दुनियाएँ [illegible] रह गयी
[illegible] था।

शायद उनसे जो खोजी गयी,
और व्यक्तिगत दुनियाओं का विसर्जन—
फिर उन्हें लौटाकर लाने का द्वार
बंद कर देती हैं, क्षतिपूर्ति असम्भव है।
गूञ्जते रह जाते हैं संवेदनशील शब्द,
जिनसे फिर आने वाले लोग
अपनी-अपनी दुनियाओं का
नया सृजन करते हैं।

सृजन करते हैं मेरे-तुम्हारे
और हमारे व्यक्तिगत जगत जो शब्द,
उनमें है कितना सामञ्जस्य कितना विरोध है,
कितनी लय और कितनी प्रलय है,
इस पर निर्भर हुआ करता है
नये विश्व-बोध काव्य का सौन्दर्य।
हम सब शब्द हैं, संगत-असंगत, सार्थक-निरर्थक,
सब अपनी गरिमा में
मस्तक उठाकर उद्धत हैं अपनी जगह पाने को,
और इस काव्य को
कोई नहीं रचता
शब्द स्वयं संघर्ष या संधि कर जगह बना लेते हैं
और हर बार नयी नयी लगती है
आत्मांश-सी प्रिय एक महाकाव्य सी दुनिया।

मैं तुम्हें क्या दूं

मैं तुम्हें क्या दूं ऐ साथी
अपना क्या है
इस सर्वहारा के पास
तीन शब्द चुरा लाया हूं
बैंकों के सेफ वाल्ट से
'लड़ो और लड़ो'
एक एक शब्द बड़ा कीमती है
इनकी आवाज बन्द करने के लिए
जड़ दिये जाते हैं
लाखों रुपये के ताले—काले काले
इनसे दो बात
बड़ी दुर्लभ है ऐ साथी

मैं तुम्हे क्या दूं ऐ साथी
मेरी सांस
जो तुम्हे छू रही कपोलों पर
मैं चुरा लाया हूं
उन बुर्दाफरोशों की तराजू से
जिनके हाथ
बेच रखी है मैंने यह जिन्दगी
एक एक सांस बड़ी कीमती है
अब अपनी सांसों से

मुलाकात
बड़ी दुर्लभ है ऐ साथी

मैं तुम्हे क्या दू ऐ साथी
मेरा हाथ
जो तुम्हारे हाथ तक पहुच गया है
मैं चुरा लाया हू
उन खातो से जहा बधक रखे है
तुम्हारे स्पर्श से
अहसास हुआ ये मेरे अपने हैं
मेरे ही सपने है
एक एक स्पर्श बडा कीमती है
सहारा देना थोडा सहारा देना
इन हाथो की सौगात
बडी दुर्लभ है ऐ साथी

एक पुराने महल मे

मैं बैठा हुआ हूं
इस पुराने महल मे
जिसके दर्प पर छाये हुए हैं
मकड़ियो के जाले
मेरा गव भरता है
जर्जरित प्लास्टर के
झरने की आहट से
(शायद ऊपर से कोई जेट
निकल गया है
अट्टहास करता)
मुझे लगता है जैसे मैं
क्षुद्र तिलचट्टे-सा रग गया हूं
दुबक कर
और तिलचट्टा के दुबक बठ जाने से
झरना नही रुकता है
जर्जरित प्लास्टर का।

मैं बठा हुआ हू
इस पुराने महल मे
जिसमे हर दिन एक ईंट सा गलकर
खिसक जाता है सिसकता
अतीत का गव-गुम्बद

मौत बन कर टूट पड़ना चाहता है
मेरे सिर पर
वर्तमान दरारों से झाँकती हुई
उच्छृखला दूब के शैतान इशारों पर
काँप काँप उठता है
सारा अस्तित्व
(शायद कहीं डायनामाइट से
उड़ा दी गई है
धाराएँ रोकनेवाली चट्टान)
मुझे लगता है जैसे मेरी धड़कनें
दूब में समायी हुईं
एक सूरज को ताकती हैं आशा से
और सूरज का ताकने से
सिसकना नहीं रुकता है
गलती हुई ईंटों का

मैं बैठा हुआ हूँ
इस पुराने महल में
एक साँप फुफकारता है शीश पर
मणि धारे
मेरी विरासत है विषैली हिरासत में
और जान साँसत में
वे जो जानते थे
जहर उतारने का मंत्र
उन्हें सूँघ गया है साँप
और मैं अकेला हूँ
सर्पीली आस्था के जादू से बँधा हुआ
मैं छटपटाता हूँ

कोई है कोई है
मेरे गले से क्यों नहीं निकलती है
कोई भी आवाज
मैं डरता हू नारो से
(शायद कहीं सड़कों से
निकल गया है
नारों का जलूस)
और नाग की आंखों का जादू
टूटता ही नहीं है
कोरे छटपटाने से

मैं बैठा हुआ हू
इस पुराने महल में
झरना नहीं रुकता है जर्जरित प्लास्टर का
सिसकना नहीं रुकता है गलती हुई ईंटों का
टूटता नहीं है जादू नाग की आंखों का
क्या मैं ढह जाने दू इस महल को
अपने आप
क्या मैं दफना दू जीवित ही अपने ताप
या उठ बैठूँ
और बाहर निकल पड़ू
चीखूँ और चिल्लाऊँ
बारूदी सुरंगे बिछाकर लगा दू
एक आग
जो मेरे अन्दर
सुलग रही है न जाने कब से

विलुप्त पीढ़ी का गीत

मेरी कोई पीढ़ी नही जो बुजुर्गा
कोई पीढ़ी नही
वह मैं नही जिसका पुकारते है आप
शायद कही हो
शायद कही

मच पर दृश्य परिवर्तन के बीच कही
जो अधकार आता है
जिसका कोई दर्शक नही कोई श्रोता नही
उसका अनजाना अनदेखा
अस्तित्व
आप नही जानते नही पहचानते
धष्टता क्षमा करे

क्षण और क्षण के बीच ठहरा हुआ समय
जिसे कोई नही भोगता
किस वदना मे जीता है क्या प्रतीक्षाए
करता है
वह गत-आगतातीत
अनानुभूत सत्य
आप नही जानते नही पहचानते
धष्टता क्षमा करे

लिखते-लिखते जब टूट जाती है एक पंक्ति
तब दूसरी से पहले
जो रिक्तता छूट जाती है स्वाभाविकतया
वह अभिव्यक्ति शून्यता
की तिलता
आप नही जानते नही पहचानते
धृष्टता क्षमा करे

धृष्टता क्षमा करे
आप मुझे जकड़ना क्यो चाहते हैं
पतवार की तरह पकड़ना क्यो चाहते हैं
आपकी यह नौका
लहरो के शीश पर
नही
रेत के खोसे पर रखी है जो बुजुर्गो

मेरी कोई पीढ़ी नही ओ बुजुर्गो
कोई पीढ़ी नही
पीढ़ियां होती इन्सानो की, पशुओ की
नही कभी जिन्सो की

जिन्सें जो फुटपाथो के खोमचो पर
मक्खियो के चूसने से
पड़ी हुई है
निर्लिप्त और निरपेक्ष
जिन्सें जो शो केसो मे न्योनलाइट के
प्रकाश की चकाचौध हंसी

होठो पर सजाकर
गौरवमण्डित या दण्डित
मात्र जिन्सें हैं जिनमे मैं भी पडा हुआ
इ तजार करता हू
विमान से उतरने वाले
देवता खरीदार का

जिन्सो का कोई पितृ ऋण नही
वे मनुष्य को नही
जन्म देती है सिर्फ
सिर्फ मुनाफो को
बैंको के पिजड़ो म बन्द पडी हुई ह
उनकी आत्माए
जो कभी मनुष्य थे
आज सिर्फ जिन्स है जिना के पहरे मे

हाट उठ गयी है वह जिसको
आप अपनी
कह रहे थे
आपको मैं दोष क्या दू श्रो बुजुर्गो

आपकी कोई अगली पीढ़ी नही श्रो बुजुर्गो
कोई अगली पीढ़ी नही
क्या है धरोहर जिसकी रक्षा आप चाहते ह
क्या है परम्परा
जो आगे बढ़ायी जाय

उत्तराधिकार
भूखा नगा आसमानी छप्पर निराधार

बरसात के अनगिनत छेदों के मारे
कांपते हैं भयभीत तारे
न रक्षा करता है
न वज्र बन
वक्ष पर गिरता है
जिसके साये में न मौत है न जिन्दगी

परम्परा
एक शिला-लेख धरती के सीने पर आ गिरा
भाषा कोई नहीं जानता जिसमें वह लिखा है
अजायबघर में रखा है
मिलों की चिमनियों में
दफ्तरों की फाइलों में
डूब गयी हैं सदियां
शेष केवल कौतूहल है
जिनके न पीछे कल है और न आगे कल है

भव सागर पार उतरने की प्रार्थनाएं
तथास्तु
पूरी हो गयी हैं
अब कोई नहीं और आग पार तरने को
लहरों की भुजाएं
चट्टानें बन गयी हैं
निर्वाण पा गयी हैं सारी आत्माएं
और क्या कामनाएं हैं आप बुजुर्गों

मेरी कोई पीढ़ी नहीं आप बुजुर्गों
कोई पीढ़ी नहीं

रेगिस्तान के जगह बदलते ढूहो मे
दबी पडी सभ्यताए
पड़ी होगी पडी रहे
ढूह जगह बदलते है तो नया रूप
कोई नया नही होता
दिखायी दे जाती है कही कोई दूब
मृगतृष्णा है
जिजीविषा
किसी सम्भावना की एक प्रतीक्षा
मैं वह प्रतीक्षा हू
केवल प्रतीक्षा
अविराम अविराम अविराम

रात पहले पहर मे

मार खाये हुए बेचारे दिन की रग रग
लाल-लाल नीली नीली और फिर काली
पड़ गयी है। जगमग जगमग

नियोन लाइट का अनिजार चेहरा
उतर गया है सुनकर मानो कोई गाली।
छितर गया है मनहूस कुहरा।

उतार लिया उड़े हुए स्याह रंग का ओवरकोट
ओढ़े हुए खड़ा है एक वृक्ष
चौराहे पर। जैसे पिटी हुई गोट

राह की रेलिंग के सहारे खड़ा हुआ
शायद मैं ही हूं, निरपेक्ष और निष्पक्ष
अपने से और सबसे, हूं और नहीं

चौराहों के सलीब पर हर कहीं
काले लहू से लथपथ मैं हूं जड़ा हुआ
पथ हो गये हैं खाली, सूने, सूने

एक सनसनी से बोझिल, आतंकित हैं
ठहरी हुई, सहमी, बेचैन हवाएं
फुस-फुस कहीं होती हैं बातें

उन षड्यन्त्रकारियों की मीठी बोलती घातें
आज के दिन जो सत्ता की रंगीन ध्वजाएं
फहराये रख सकें, कल के लिए चिंतित है।

जिनका न कल था, न आज है,
न कल होगा, वे टेलिग्राफ खम्बे
खड़े हुए हैं यन्त्रात्मिक, लम्बे-लम्बे

कंधों पर सारे तार सारा राज-काज है
ओर छोर पर टेलीप्रिंटर और रातरियां
गढ़ रहे हैं झूठ के खूबसूरत शैतान

जो कल सुबह खोजेंगे कहां है इंसान
बना देंगे उन सबको भुस की गठरियां,
मांस से भर जायेंगी फैक्टरियों-दफ्तरों की गुफाएं।

दिन में फैक्टरियों-दफ्तरों की छतों में लटकी हुई
चमगादड़ें अब पंख फड़फड़ाती हैं वाईं शाम तड़को,
तड़प रहा हूं मैं—कहां है घर, कहां है घर?

एक बंगले में पहुंची आकांक्षा भटकी हुई
जो मानो एयर-इण्डिया का रिसेप्शन है, जहां हर लड़की
का बिजनेस है मुसकुराना आंख मटकाकर।

वह घर है या कोठा, जहां एक भोली सी औरत
लेट जाती है साथ में दो रोटी की खातिर
हर बेटा और बेटी जहां किसी पाप की निशानी।

आरामारों के खाना सी कई मंजिली इमारत
मात्र जिसम भर दिया जाता है ठूस-ठास कर,
राजदण्डधारी करते रहते हैं निगरानी,

वक्त आते ही चल पड़ता है यह माल
ग्राहक के पास अपने आप, अपनी चाल,
लौट पाया तो लौट आता है फिर अपने खाने पर।

बेघर और बेदर, राह की रेलिंग के सहारे
मैं खड़ा हू, समय ठहरा है सितारा मे,
ठहरा रहेगा कब तक अपने स्वभाव के विपरीत।

बाहर हर तरफ ठण्डे है स्पर्श सारे
अन्दर धधकते हैं अहसास के क्रुद्ध गीत
जलना है जिंदा रहना इन गलियारों मे

मांस के जलने की तीखी गध, दमघोटू यातनाए
कुहरा बनी छायी है, मौन का पत्थर है छाती पर।
मैं सहसा कितना बड़ा हो चला हू इस थानी पर,

आसमान छू रहा है मस्तक और बाहे दिशाए,
मेरे मुह का धुआं छा गया शहरा और गावो पर,
धरती सिमट आयी है सिकुडी मेरे पांवा पर,

जी चाहता है एक ठोकर से उडा दू यह पत्थर,
थूक दू उफन जाये बधे सिन्धु सारे,
मुट्ठी मे पास कर ब्रह्माण्ड गढ़ दू एक घर एक घर।

एक और दिन

एक और दिन
स्याह मौत के मुंह में
हाथ डाल कर
तोड लिया है
सफेद दाँत
मेरी गुलाबी हथेली पर
रख दिया है समय ने
शायद फिर मजाक
कर लिया है मुझसे
जिस पर वह खुद ही हंस पड़ा है
मैं नहीं हँस सका

मेरी काली आँखें
जिन किरणों से नीली भूरी
हो गयी है निरभ्र
उन्हे मैं
देखता हू विस्मय से
फैली हथेली पर गहरी रेखाएँ
गीली-गीली सड़कों सी
मुझे बुलाती है
आओ आओ
मैं नही जानता इन
रेखाओं का अर्थ

फिरभी शायद आदत से
विवश सा
मैं चल पडता हू
पाँव रखने लगता हूँ भविष्य मे

जब मैं ठिठक जाता हू
खिड़की से झाँकते हुए
फूल को
या मुडेर पर बठे हुए
कबूतरो को
देखने की लालसा से
एक शीतल सुगधित हिलोर से
भर जाता है निर्जीव सूना सा अस्तित्व
एक और गीयर बदल जाता है
कही मेरे अन्दर
हाथ स्टीयरिग पर
महसूस करते हैं
धड़कनें
- धक् धक् धक् धक्
पेट्रोल और फूलो की
मिश्रित सुगध से
अभिभूत गति अधिभूत
मैं राह के पेड़ो
और खम्भो को
छूता हुआ चलता हू
पोस्टरों और साइनबोर्डों को

पढ़ता हुआ बढ़ता हूं
और मुझे
लगता है
हर चीज के होठों पर
एक अनसुना प्रकम्पन है
अनगुंजा
और उन सबके लिए
मेरे अन्दर कुछ शब्द हैं
अनसृजित
जिनको मुझे अपनी
प्राणप्रिया के लिए ही
रचना है सजोना है

हर वस्तु जिसे मैं
देखता हूं छूता हूं
सुनता हूं चखता हूं
श्वासों में भरता हूं
एक शक्ति दे जाती है
अनायास
समस्त आकारातीत
स्पर्शातीत स्वरातीत
स्वादातीत गंधातीत
और मैं विह्वल हो उठता हूं
उसे दे देने को
किसी नव आकार में
नवल स्पर्श में
नवीन स्वाद नये स्वर में

और कुछ नही तो तरगित सी
किसी नयी गध मे
मैं पत्थर को देता हू
नगर खड़े हो जाते हैं
मरुस्थल मे
इस्पात मे रोपी हुई धडकने
ढालने लगती है
नये रूप नये रग
मिट्टी उछाल देता हूँ
ठहर जाती ह वह नभ में
नक्षत्रगण बनकर
रेखाएँ खीच देता हू
शब्द साँस लेने लगते हैं
कालजयी अक्षय

अपनी उपलब्धियो पर
खुश होता हू बच्चो सा
किंतु तभी
असन्तुष्ट हो उठता हूँ
उनमे अपने को न पाकर
सर्वांग और सम्पूर्ण
मै बडा हो उठता हू
बहुत बड़ा
मेरा सिर आसमान चीर कर
उठ जाता है वहा तक
जहाँ तक रिक्तता ह
शून्य है



क्या कोई अर्थ है ?

जहां बाहों का अथ हैं राहें
और उनके छोर पर
हथेलियां हैं
नोमैन्स लैण्ड
वहां आलिंगित ज्वालाओं में
तुम्हें आवाहन करते हुए
मेरे डरने का
क्या कोई अथ है

जहां खुले हुए ओठ
कोरे कागजों से फैले हैं
मले हो रहे हैं
धूल की पर्तों से
अनलिखित शर्तों से
वहां उत्तराधिकार में प्राप्त
प्रभुसत्ता शून्य
अर्थवत्ता की मुहर लगाते हुए
मेरे सिहरने का
क्या कोई अथ है

जहां हर आत्मांश का जन्म है
सर्प दंशों का आतंक

क्या कोई अर्थ है ?

जहां बाहों का अथ है राहें
और उनके छोर पर
हथेलियां हैं
नोमैन्स लैण्ड
वहां आलिंगित ज्वालाओं में
तुम्हें आवाहन करते हुए
मेरे डरने का
क्या कोई अर्थ है

जहां खुले हुए ओंठ
कोरे कागजों से फैले हैं
मैले हो रहे हैं
धूल की पर्तों से
अनलिखित शर्तों से
वहां उत्तराधिकार में प्राप्त
प्रभुसत्ता शून्य
अर्थवत्ता की मुहर लगाते हुए
मेरे सिहरने का
क्या कोई अर्थ है

जहां हर आत्मांश का जन्म है
सर्प दंश का आतंक

हर काम्य बीज का फल है
अनचाहा अपना ही शत्रु

वहां आदिम उवरता मे
हिमशिखरो से गिरते हुए
मेरे विष झरने का
क्या कोई अर्थ है

जहां हर स्पर्श से पहले है
कट्रासेप्टिव का स्पर्श
और हर आनन्द को
उसके जन्मदाता हाथ
फेंक देते हैं कूडा घर मे
वहां रोमांटिक जगत
एक विपरीत गति बिम्ब मे
प्रेत सा
मेरे विचरने का
क्या कोई अर्थ है

आत्म-निर्वासन

[१]

एक और दिन फेंक गया है
कोई मेरे सामने
मुझे दीन-हीन भिखारी समझ कर
खोटे सिक्के को सार्थकता दू भी
तो कैसे दू
यहां अस्पताल है
नो हार्न प्लीज
बाहर लोग चल रहे हैं खामोश
उस वायरस से भयभीत
जो अखबार की खबर की तरह
फैल जाता है अनायास
शहर भर मे
लोग भीड़ क्यो हैं
जुलूस क्यो नही बन जाते
मैं रोग शैया से उछल कर
बाहर पहुचने को कसमसाता हू
कायर कण्ठ मे घुमड़ने वाले
क्रान्तिकारी नारे की तरह

अच्छा मेरे रोग से चिंतित है
सारे अधिकारी
नगर में है सफाई का अभियान
लोगों के जमा होने पर है पाबंदी
सिर्फ पूजा और कीर्तन खुले हैं
अखबार रोज छापते हैं
रोग से बचने की हिदायतें
कहो अश्रुगैस-लाठी से
वे ला रहे हैं
लोगों को होश में
वे मेरे पास आये हैं
कहते हैं मैं मर कर स्वर्ग नहीं
जाता हूं क्यों कर
देशभक्ति की खातिर

उनके देशभक्ति की बात बघारते ही
मुझको लगता है
वे अभी छुरा भौंक देंगे
मेरे पलक मारते ही
मेरी मां पड़ी है मरणासन्न
यहीं किसी वार्ड में
वे किसी थैलीशाह की खूब खेली खायी
खूसट रखैल ले आते हैं
कहते हैं ले पूज, यह तेरी माता है

वे हर जेल को कहते हैं अस्पताल
और हर अस्पताल को घर

और हर घर पर व स्वय बठे है
काले मणिधर
और अपने ही घर मे
मेरा अपना निर्वासन

[२]

मनहूस सूरज आखे मीचकर
बदबूदार कै कर देता है
मेरी हथेली पर
एक नगर गधाने लग जाता है
छितरा सा बिखर कर
मैं शायद बीमार हू
अकेला हू
डाक्टर खुद अपना इलाज कर रहे ह
झगड रहे हैं अपने डायग्नासिस पर
मुझे जिन्दा ही मुर्दाघर मे छोड कर
मरे हुए लोगा के बीच
मैं सोचता हू
इनमे से कितने लोग जीवित हैं
क्या व जाग सकते हैं
मेरी आवाज की ठोकर खाकर
परिवेश है एक अस्पताल
पाक साफ
माफ हैं सौ खून
नर्स सदा मुसकुराती ही रहती है
और मरीज सदा चीखता है

स्वस्थ देह के लिए गेह के लिए
मैं जानता हू
मौत सबको खा लेती है एक दिन
मैं उससे छीनता हू एक-एक मीठा क्षण
चूसता हू चिंविंग गम
क्या एक और गम
तुम मुझे दे सकते हो

फूलो का गुलदस्ता
और फलो का रस लेकर
प्यार के आसू बहाने वाले
ओ आध्यात्मिक
मेरी आखो के सामने से हट जाओ
मैं एक एक्स-रे दे सकता हू
पारदर्शी शब्द
जिससे देह दर्शन नगा हो सकता है
शल्याघात की क्षमतावालो यहां आओ
वे जिनके हाथ नही कांपते
इस्पाती औजारो को पकड़कर
वे जो समझते है इन यत्रो को
अपनी इच्छाओ का दास मात्र
मैं केवल उनकी परीक्षा हू
प्रतीक्षा हू
मैं जानता हू शल्याघात के क्षणो मे
मेरा भविष्य है और नही भी है
मैं अधीर हू अतिम निर्णय के लिए

[३]

जब शामे गर्म होती है और सुबह ठंडी,
जब दिन तपाता है और रक्त जमा देती है रात,
जब एक मौसम से होने लगता है अकस्मात् संक्रमण
किसी अन्य मौसम में, तब कोई वायरस अभिजात
घात में आ बैठता है हर गली मोड़ पर।
मेरी बीमारी है, हां, मेरी अपनी ही दुर्बलता
प्रतिरोध शक्ति की क्षीणता।
गिद्ध लाश ही नोचते हैं।
जब ज्वर रेंगने लगता है कीड़ों की तरह जिस्म पर,
तब सन्त्रास की किस्म से मैं समझ जाता हूं
कौन सा है वह मौसम जो अब आ रहा है।
(सुना है कि मौसमों की पुरानी पहचान
आदिम कबीलों में पनाह पा रही है
पेड़-पौधों-फूल-पत्तों के आंगन में
नंगी बैठी हुई)
मेरे मित्र नग्नता पर कविताएं लिख सकते हैं,
भोग नहीं सकते, सब स्त्री लिंगा-पुल्लिंगों के
द्वारों पर भारत सुरक्षा का ताला जड़ दिया गया है,
माहवारी खाते ये सारे दिवालिया है तुम्हारे
मैं मानसिक मैथुन में विश्वास नहीं करता।
शायद इसीलिए मेरा पौरुष रहता है उत्तेजित।
तुम ने एण्टीबायोटिकों के नाम रट रखे हैं काफी
लेकिन मित्र इन सबसे इम्यूनिटी जो पा चुका है उसका
क्या होगा उपचार ? जाओ और नयी शोध करो।
मुझे अगर चाहोगे गिनी पिग बनाना,

भूख

तपते हुए आसमानी खालीपन के नीचे
एक पाथारी फसल। काल और अकाल के
बीच एक भूख खा जाती है अधकच्ची भीड़।
कागजो का पेट भर गया है मैं बहुत भूखा हू।
मेरे आगे खडी मिस मौना नाखूनो को देखती है,
श्रौर पीछे क्षुब्ध मिस्टर मौन मुझे खूनी समझते है।
परिवहन की प्रतीक्षा है आवाजो को। भूखी चीख
कही नही पहुचती। ईथर को इजाजत है
केवल आकाशवाणी के एटेना से भोग की।
नपुसकता के झण्डे लहराते है गौरव से
सार्वजनिक भवनो पर।

वीनस तुम्हे पता है कि
प्रेम किस चिड़िया का नाम है मैने बहुत बहुत बहुत
दिनो से नही देखा क्या तुमने देखा है? क्या देखा है?
चलो, रहने दो रहने दो प्रश्न नही दोहराऊगा।
मेरे पास भी हर प्रश्न का उत्तर नही है, किसी के पास है?
जब कोई बात नही करता तब अहसास नगे पाँव
नुकीली गिट्टियो पर दौड़ पड़ते हैं। अब मुझ से
सहे नही जाते हैं ये ठेकेदारो के मुहताज
अधबने उजड खाबड राजमार्ग। इस महानगर में
खाली जेबो मे पाँव घुस आते हैं और फिर कोई
अपने घर तक भी लौट नही सकता है अपने दम पर।

सुना था विनारा के लंबे पांव होते हैं।
लुप्त हो गये हैं क्या पांव आदमी की पूंछ जैसे
मेरे पांव कहां हैं अभी कमर के नीचे कुछ शेष है।

प्रोमेथ्यूस, जरा माचिस की डिब्बी तो देना,
जिसे तुम चुरा कर लाये थे शायद किसी टविल से
मैं जरा सिगरेट जला लूं और सोच लूं, हां सोच लूं,
डरते हो कि कहीं आग न लगा दूं इस कागज के
नगर में, सुबह अखबार क्या कहेंगे? मैं बता दूं
कोई मिथक फिर नहीं जनमता दुबारा नहीं जनमता।
माचिस की तीलियों से कोई पहिया नहीं बनता
इस इस्पाती समय का। नियोन लाइट की दमक में
हाथों को हाथ नहीं सूझता। वापस लोगे क्या माचिस?

कभी तुम अंधेरे के अभ्यस्त होकर देखना,
तुम्हारी आंखों से निकलकर एक अनटोन प्रकाश की
किरण चल पड़ेगी तुम्हारे आगे आगे आगे।
मुझे अंधेरे की भी सार्थकता में आस्था है।
मैं बहुत भूखा हूं और भूख के पांव बड़े लंबे हैं।

वियतनाम

मैं अपने ही देश मे विदेशी हूं,
अनधिकृत प्रवेशी हू
मनुष्य नही, गुरिल्ला हूं
मैं बैठ गया हूं एक अंधेरी गुफा में
बना रहा हू आदिम अस्त्र कुछ
जोखम भरे शब्द
और कभी-कभी छापे मार देता हू
आधुनिकतम हथियारो से सुरक्षित
सभ्यता के खेमे पर
लिख देता हू अपने लहू से एक कविता
एक चेतावनी यातनागृहो की दीवारो पर
भाड़े के सिपाहियो और
तिकड़ा से निर्मित
मैं ससद की हर टेबिल पर
छोड़ आया हूं हैंडग्रेनेड
और हर मोड़ में कुछ टाइमबम
और हर घर मे बना आया हूं
कारतूसो और बदूको की फैक्टरियाँ
और हर खेत और हर कारखाने मे
लोगो को बन रहा हूं गुरिल्ला
मेरे हाथ में एक कलम एक,
तारपीडो है विध्वसक

साथ बेड़े पर लद कर सारा इतिहास
मैं डुबो दूंगा प्रशान्त महासागर में
और सारे अटलान्त महासागरों के,
किनारे जलते हुए
पर्वत और जंगलों में
फिर मेरा देश जन्मेगा
एक नये गुरिल्ले से
शुरू होगा फिर मेरा अपना इतिहास

रणजीत

पृष्ठभूमि

जर्द है चाद का मायूस चेहरा
रह रह कर खास उठता है
दमे का मरीज बूढ़ा आसमान ।
उधर
अपना गम गलत कर रहे है सितारे
व्हिस्की की तल्ख़ घू टो मे
और इधर
भूख से कुलबुलाती हुई ओस की दुधमु ही बू दें
अपने अस्तित्व की भीख माग रही है ।

फुटपाथो पर ठिठुर रहा है बेघरबार सन्नाटा
बेरोजगारी से तग उजाला
रेल की पटरी पर कट कर मर गया है ।
अपने कसमसाते हुए प्यार को पाबन्दियो के किनारो मे
जकडे
करवट बदल रही हैं
हिस्टीरिया से पीडित भीलें
पहाड
अपने पौरुष की लाश पर पुराने सस्कारो की बर्फ का
कफन डाले
मातम मना रहे हैं ।

अकेला चीख रहा है कुंवारी रात का प्रत्येक क्षण।
बादलों की जवान बेटियां
जिस्म की दूकान कर रही हैं।
पत्थरों को पूज रही हैं मासूम कलियां
फूलों को परेड मैदानों में पंक्तिबद्ध करके
संगीनें भोंकने की दीक्षा दी जा रही है।
हथकड़ियों से जकड़ी हुई हैं पेड़ों की शाखें
वेलों की सांसों पर पहरा लगा है।
सुरक्षा-अधिनियम में गिरफ्तार कर लिये गये हैं झरने
आंधियों के आंदोलनों को
मशीन गनों से भूना जा रहा है।
टीयर गैस से आक्रांत हैं दिशाओं की आंखें
धरती का एक-एक जोड़

दर्द कर रहा है

शायद कोई सवेरा
क्षितिज के गर्भ में छटपटा रहा है।

विष-पुरुष

पास मत आओ मेरे
मुझसे न पूछो बात कोई
मत बढ़ाओ हाथ मेरी ओर तुम सम्पर्क का—
मैं विष-पुरुष हू ।

बहुत सक्रामक हुआ करते है नीले जहर के कीडे
कही ऐसा न हो
इस जहर की लहरे
तुम्हारी धमनियो के रक्त मे भी उमडने लग जाय
आग
अतर में दबाए हू जिसे मैं
झपट कर कोई लपट उसकी तुम्हे छू ले
कि वे चिगारियां जो
युगो से सोयी हुई है सद सासो में तुम्हारी
आज फिर जग जाय
इसलिए मुझ से बचो
जो वर्तमान को ज्यो का त्यो स्वीकार
जिन्दगी जी लेने की बात सोचने वालो ।
आजकल विष बांटता हूँ मैं ॥

पीले प्रेतो की बस्ती मे

कभी कभी डर सा लगता है
इस पीले प्रेतो की बस्ती म रहते रहते ही
प्रेत न मं खुद ही हो जाऊ
कही न डस ले पू जी का अजगर मुझको भी
प्रेतो के हाथो में भी बिक जाऊ
उन सब जिन्दा इ सानो की तरह
जिन्होने पहले स्वर मे
मानवता की विजय-पताका फहराइ थी
कि तु जि हे फुसला पु सला कर
चादी के इस चक्रव्यूह में लाकर
इन प्रतो ने
आज प्रेत ही बना लिया है

यो तो अपने पर मुझको विश्वास बहुत है, लेकिन
आसपास की स्थितियो के प्रभाव को भी
झुठलाना मुश्किल है
ठीक है—
इन्सानियत के प्यार की यह वृत्ति कुछ हलकी नही है
कभी कभी पर
नोटो के कागज भी कही अधिक भारी हो जाया करते है
मनके गहरे विश्वासो को
तन की भूख हिला देती है

रोटी की छोटी सी कीमत भी कभी कभी
इन बडे-बडे आदर्शों को रेहन रखकर
मिट्टी मे गव मिला देती है ।

यदि ऐसा हो कभी
कि इसले पूजी का अजगर मुझ को भी
प्रेतो के हाथा मै भी बिक जाऊ
मानवीय क्षमता
समता के गीत छोडकर
प्रेतो का ही यशोगान करन लग जाऊ
तो—
ओ छलना स बच हुए जिन्दा इसानो !
मुझको मेरे वे गीत सुनाना
जो मैने कल प्रतो का इन्सान बनान को लिक्खे थे
प्रेता मे सोया ईमान जगान को लिक्खे थे
एक ओर विकते आदम पर
एक ओर बनती छाया पर
उन गीतो की शक्ति तौलना
हो सकता है
उनकी गर्म सास फिर मेरे
मुर्दा मन में प्राण फूक दे
किरणो की अगुलियां उनकी
चादी के पर्तों में दब पड़े
इसानी बीजो को अकुर दे जाय
फिर से शायद
भटका साथी एक तुम्हारा
राह पकड ले

और तुम्हारा परचम लेकर
लड़ने को प्रस्तुत हो जाये—
कभी कभी डर सा लगता है।

माध्यम

मैं माध्यम हू।
मैं उन सबकी भटकती हुई आत्माओ का माध्यम हू
जो अधूरे और अतृप्त मर गये
मेरे कठ मे उनके स्वर हैं
जिन्होने सारी जिन्दगी नि शब्द गुजार दी
मेरी कलम मे उनकी आग है
जो अपनी आग अपने दिलो मे दबाए हुए ही चले गये
मेरे गीतो मे उनका विद्रोह है
जिनकी गर्दन उठने से पहले ही झुका दी गई
यह मैं नही उनकी आत्माए बोल रही है।

जब मैं बोलने के लिए अपना मुह खोलता हू
कुछ भटकते हुए शब्द मेरे आसपास मडराने लगते हैं
ये उस अग्रज लेखक क्रिस्टोफर कॉडवेल के शब्द हैं
जिसने स्पेन की आजादी की लड़ाई में अपनी जिन्दगी दे
दी थी
ये इटरनेशनल ब्रिगेड के उन सकडो क्रातिकारी सैनिको के
शब्द हैं
जिन्हे भाप बना कर उड़ाने के लिए
नाजी गेस्टापो के हाथो सौंप दिया गया था
ये पोलेण्ड के उन हजारो मूक यहूदियो के शब्द हैं
जिन्हे जिन्दा दफनाने के लिए

खुद उन्हीं के हाथों से कब्रें खुदवाई गयी थीं
आसविट्ज के गैसचेम्बरों में घुटी हुई ये लाखों आवाज
अब खुले आसमान में बिखर कर लोगों के कानों तक
पहुंचना चाहती हैं।

मैं माध्यम हूं।
जब मैं लिखने के लिए अपनी कलम उठाता हूं
एक आग मेरी कलम को घेर कर खड़ी हो जाती है
यह आग अल्जीरिया की उस जवान विद्रोहिणी जमीला
की आग है
अमानुषिक अत्याचारों के बल पर
जिससे वे सब अपराध स्वीकार कराए गये
जो उसने कभी नहीं किये
यह सीक्रेट आर्मी की शिकार हजारों अल्जीरियाई
मशालों की आग है
जिनकी जिन्दगियां
फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों की नजर में
बोर्ड पर लिखी हुई रेखाओं से ज्यादा कीमत नहीं रखतीं
यह आग चाहती है कि मैं इसे कागजों के पृष्ठों पर
उतारता जाऊं
और कागजों के पृष्ठों से वह लोगों के दिलों तक पहुंचती
जाय।

मैं माध्यम हूं
टूटी हुई आवाजों और दबी हुई चिनगारियों का माध्यम।

जब मैं अपना साज संभालता हूं
एक दर्द मेरे आसपास आकर जमने लगता है

यह कांगो के बेताज बादशाह लुमुम्बा का दर्द है
जो मेरे साज को उदास और आवाज को गमगीन
बना रहा है
यह कांगो की आजादी के उस सिपाही का दर्द है
जिसे निहत्था करके गोली मार दी गयी
और कांगो के जमे हुए खून में एक उबाल भी न आया।

मैं जब अपनी पलक उठाता हूं
कुछ घायल और बेतरतीब सपनों को अपने आसपास
मंडराते हुए पाता हूं
ये तेलंगाना के उस बूढ़े किसान के सपने हैं
जिसने जमीनों पर जोतने वालों का अधिकार चाहा था
और इसके इनाम में जिसके हाथ पैर काट दिए गये थे
ये उन एक सौ आठ बागी किसानों की पलकों के सपने हैं
जिन्होंने अपनी पकती हुई फसलों और जवान होती हुई
बेटियों को
लुटेरे हाथों से बचाने के लिए
बन्दूकें उठा ली थी
और जिनकी पलकें फांसी के तख्तों पर लाकर मूंद
दी गईं
ये तेलंगाना के उस नन्हे से विद्रोही गांव की
सैकड़ों स्त्रियों और बच्चों के सपने हैं
जिसे हिन्दुस्तानी सरकार के बहादुर सिपाहियों ने घेर कर
आग लगा दी थी
ये सपने चाहते हैं
कि मैं इन्हें दुनिया के एक एक इन्सान की पलकों तक
पहुंचा दूं।

मैं माध्यम हूं
बेताब दर्दों और घायल सपनों का माध्यम।
जब मैं सोचना चाहता हूं
एक भयानक पागलपन मेरे दिमाग को चारों ओर से पकड़
लेता है
यह उस अमेरिकी पायलट का पागलपन है
जिसे हिरोशिमा पर एटमबम गिराने का आदेश दिया
गया था
और जो इस भीषण नरमेध का प्रायश्चित
अमेरिकी पागलखानों में कर रहा है
यह पागलपन व्याकुल है
कि मैं इसे दुनिया के हर जंगबाज नेता
और उसके हर वफादार सिपाही के दिमाग तक पहुंचा दूं।

मैं माध्यम हूं
और जब ये शब्द यह आग और ये सपने मेरे आसपास
मंडराते हैं
मैं अपने क्षुद्र से व्यक्तित्व को भूल जाता हूं
और मुझे लगता है कि मैं ही वह अंग्रेज लेखक हूं
अल्जारियाई जमीला हूं
मैं ही रबर की तरह जमी हुई कांगो की आत्मा को
हिलाने की कोशिश करने वाला लुमुम्बा हूं
आग में जिंदा जलती हुई स्त्रियों और बच्चों की ये
दर्दनाक चीखें
मेरे ही भीतर से उठ रही हैं

मैं ही वह पवित्र पागलपन से आक्रांत अमेरिकी पायलेट हूँ
ये सब मेरे ही भीतर जी रहे हैं
मैं माध्यम हूं ।

फाउस्ट के कन्फॅशन

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए
मैंने अपनी आत्मा को रेहन रखा था
सोचा था
कि जब फिर मेरे पास पर्याप्त शक्तियां हो जाएंगी
उसे छुड़ा लूंगा
लेकिन मुझे क्या पता था
कि ज्यों-ज्यों मेरी शक्तियां बढ़ती जाएंगी
शैतान का कर्ज भी बढ़ता ही जाएगा
और आखिर जब मैं उसे छुड़वाने लायक हुआ
मेरी आत्मा नीलाम हो चुकी थी।

अपनी मिट्टी के बचाव के लिए
मैंने अपने विद्रोह को सुलाया था
सोचा था
जब मैं फिर लड़ने लायक हो जाऊंगा
उसे जगा लूंगा
लेकिन मुझे क्या मालूम था
कि वह अफीम जो मैंने उसे सुलाने के लिए दी थी
उसके लिए जहर साबित होगी
और आखिर जब मैं लड़ने लायक हुआ
मेरा विद्रोह मर चुका था।

उफ़ ।
जिसे आपदधर्म की तरह स्वीकार किया था
उसे जीवन दर्शन बनाने के लिए मजबूर हुआ।।

अब मैं भटक रहा हूं
अपने आत्महीन अस्तित्व के कंधों पर
अपना असफल विद्रोह की लाश रखे हुए
ताकि देख लें मेरे हमसफर
समझ लें
कि किस तरह समझौता
—एक सामयिक समझौता भी—
विद्रोह की आत्मा को तोड़ देता है ।

मॅरेलिन मनरो का अन्तिम पत्र

सुनो,
ओ दुनिया के सबसे सम्पन्न और सबसे सभ्य देश के भद्र
नागरिको,
सुनो !
मैं जो अबतक सिर्फ तुम्हारे एयर-कंडीशण्ड टॉकीजो
के पर्दों
या फिल्मी अखबारो के रंगीन पृष्ठो पर से ही बोलती
रही हू
मैं जो अब तक ओढे हुए व्यक्तित्व ही तुम्हारे सामने रखती
रही हू
निर्माताओ-निर्देशको-संवाद लेखको के शब्द ही
तुम्हारे सामने दुहराती रही हू
आज तुम्हे अपने ही दिल और दिमाग से निकले हुए
अपने ही शब्दो से संबोधित कर रही हू ।

सुनो, अमेरिका के कला मर्मज्ञ फिल्म-निर्माताओ,
निर्देशको, आलोचको और दर्शको !
तुमने मुझे हमेशा नीद को गोलिया दी है !
मेरी चेतना, मेरे विवेक, मेरे अहसास को सुलाया है
मेरे नारीत्व, मेरे व्यक्तित्व, मेरी आत्मा का होश छीना है
और मेरी भूख, मेरी प्यास, मेरे स्तना और मेरे नितम्बो
को उभारा है

मेरे होठो के रग और मेरे बैंक बेलस को शोखी दी है—
मेरे शरीर को जगाया है !
इस शरीर को, जिसने अब मुझे पूरी तरह से लील लिया है
यह शरीर जो अब मेरे व्यक्तित्व का एक अग नही,
उसका दुश्मन बन गया है !
और आज मैं इसे उन्ही नीद की गोलियो से सुला दूगी
जिनसे तुमने मेरी आत्मा को सुलाया था !
ओ मेरे अपने देश और दूसरे देशो के मेरे प्रशसको !
मेरे सौन्दर्य के ग्राहको ! मेरे अभिनय के सराहको !
मेरी तारीफ मे छपी हुई तुम्हारे अखबारो की सतरें
तुम्हारे कलेण्डरो मे टकी हुई मेरे नगे शरीर की तस्वीरें
मेरे नाम पर भरी हुई तुम्हारी आहें
मेरे उभारो पर भिनभिनाती हुई तुम्हारी आख
मेरे होठो की ओर फेंके हुए तुम्हारे चुम्बन—
ये सब मेरे आसपास इस तरह मडरा रहे है
जैसे किसी ग दे अधसूखे नाले के कीचड़ मे पड़ी
किसी इन्सान की लाश के आसपास
घिनौनी मक्खियां जोंकें और केकड़े मडरा रहे हो
और यह सब मेरे लिए असह्य है !

ओ व्यक्तिगत स्वतत्रता का ढिंढोरा पीटने वाले मेरे देश
रहबरो !
मैं राजनीति नही जानती
समाज और व्यक्ति के उलझे हुए सम्बन्धो को नही समझती
पर एक सीधी सी बात पूछती हू
कि उन सब के लिए

तुम्हारी इस व्यक्तिगत स्वाधीनता का क्या मतलब है
जिसने मुझे व्यक्ति बनने का मौका ही नहीं दिया।
तुमने मुझे मात्र एक शरीर बनाकर रखा।
एक शरीर — जो खूबसूरत है, जवान है, मांसल है
एक शरीर — जो किसी की मां नहीं, बहिन नहीं, बेटी नहीं
किसी की पत्नी, प्रेयसी, मित्र तक भी नहीं है
मात्र एक शरीर
सैंतीस तेईस सैंतीस का एक मॉडल!

मेरी टेबिल पर कपड़े के दो खिलौने पड़े हैं
एक बाघ है और एक मेमना
कल ही मैं इन्हें खरीद कर लाई हूं
कितना भयानक कितना खूंखार है यह बाघ
और कितना मासूम कितना निरीह है यह मेमना!
पता नहीं क्यों यह विचार मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है
कि यह मेमना मैं ही हूं
और यह बाघ?
—इस मासूम मेमने को निगलने वाला यह बाघ?—
मैं सही शब्द चुनना नहीं जानती
शायद यह तुम्हारा फिल्म उद्योग है
शायद तुम्हारे बाजार और बैंक हैं
शायद — शायद तुम्हारे समाज का यह ढांचा है!

रात उदास है
और खिड़कियों पर जमती हुई बर्फ की फुहार में
किसी रहस्यपूर्ण षड्यन्त्र की फुसफुसाहट है
मेरा सिर नींद से भारी हो रहा है

अब मेरे पास सिर्फ एक गोली बची है
आखिरी और छत्तीसवीं गोली!
और इसके बाद मैं गहरी नींद सो जाऊंगी
ऐसी नींद जिससे मुझे कोई न जगा सकेगा!

मैं तुम सब की आभारी हूं, ओ मेरे देशवासियो!
मैंने इस छोटे से जीवन में बहुत कुछ पाया है
पैसा, प्यार शोहरत, इज्जत सब कुछ
दस लाख डालर का बैंक-बैलेंस, बेवर हिल्स पर एक
शानदार कोठी
दसियों कारें और लाखों लोगों के आकर्षण का केंद्र
यह शरीर
मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ पाया है।
सिर्फ एक छोटी सी इच्छा शेष है
कि कोई बिल्कुल अजनबी व्यक्ति
बिना मेरे बैंक-बैलेंस और शारीरिक उभारों का
अपनी आंखों से टटोले हुए
बिना मेरी सुंदरता और शोहरत से प्रभावित हुए
बिना जाने कि मैं हालीवुड की रानी मनरो हूं
मुझे एक आइसक्रीम खिलाता
या सहज स्नेह से सिर्फ मेरे गाल थपथपा देता।
बस!
अब मैं सो रही हूं!

मेरे आस-पास के लोग

मेरे आसपास बडे सभ्य लोग रहते है।
ये जो पानी को तो कई कई बार छानते है,
पर जहरीली परम्पराओ को आखे मीच कर पी जाते है।
रोटी की पवित्रता का तो पूरा ध्यान रखते हैं
पर सिद्धात जूठे ही खा लेते है।
सब्जी तो हमेशा ताजी ही काम मे लाते हैं,
पर आदर्श बासी ही अपना लेते है।
कपड़े तो खुद सिलवा कर ही पहनते है,
पर विचार रेडीमेड ही खरीद लेते है।
मकान तो अपना बनवाया हुआ ही पसन्द करते है,
पर विश्वास किराये पर लेकर ही काम चला लेते है।
फिल्मे तो अपनी पसन्द की ही देखते है
पर शादी अपने मां बाप की पसन्द से ही कर लेते हैं।
कितने सभ्य है मेरे आसपास के लोग ॥

एक हिन्दुस्तानी लड़की, अपने मन से

सुन रे मेरे मन।
इतना मत तन
पहले इधर देख
फिर करना मीन-मेख
सुन, यह है तेरा पति
इसके सिवा नही तेरी गति
इसको कर प्यार
अपने को मार
हिम्मत न हार
फिर कोशिश कर एक बार
आखिर इसी से काम
या करेगी अपने पुरखा का नाम ?

देख, अपने देश का तो ढग ही यही है
सदा से यही रीति चलती रही है
कि पहले किसी स भी शादी करो
फिर अपने जो हिस्से आये, उसी पर मरो
तू भी मरना सीख
तुझसे मैं मांगती हू भीख
आखिर इस बिचारे मे कौनसी बुराई है
मां-बाप ने देख सुनकर ही आखिर तुझे ब्याही है
फिर औरत को किसी न किसी मर्द से तो झुकना ही पड़ता है

तब इसी से झुकने मे क्या फर्क पड़ता है
सोचले अब तू बस इसकी परिणीता है
यह राम है तेरा तो तू इसकी सीता है
पर यह राम हो या न हो, तुझे सीता रहना है
इसका ही होकर रहना है, अगर जीता रहना है
भले घर की लडकिया का यही है ढग
जैसे कालो कामरी चढ न दूजो रग।

ये सपने ये प्रेत

मुझे घेर कर खडे हुए है मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सास नही लेने देते हैं—
दामन पकडे अडे हुए ह मेरे सपने !
मैं इनसे अभिभूत जुल्म के अगारा पर चल लेता हूँ
म इनसे आविष्ट आधियो-तूफानो मे पल लेता हू
प्रेतो से ये मेरे सिर पर चढ हुए है मेरे सपन !
मुझे घर कर खडे हुए ह मेरे सपने !!

सपने जिनको जन्म दिया था मैने
दुनिया की तीखी नजरो से छिपा-बचाकर
पाला था
पोसा था
बड़ा किया था
अब मुझ से आकार मागते
जीने का
सच बनन का अधिकार मागते
जसे किसी गरीबिन मा के भूखे बच्चे
उसका आचल खीच-खीच कर
माग रहे हो उससे रोटी—
एसे पीछे पडे हुए है मेर सपने !
मुझे घेर कर खड़े हुए है मेरे सपने !

क्षण भर के भी लिए चैन की सास नही लेने देते हैं—
दामन पकडे अडे हुए हे मेरे सपने !!

कभी-कभी मेरा हारा मन
दुनिया के सारे नियमा से समझौता कर
सीधे सादे ढर्रे से जीवन जीने की
बात सोच लेता है, लेकिन
ये अवैध जनवादी सपने
संघर्षों के आदी सपने
सब समझौते तुडवाते है
और मुझे हर जोर-जुल्म के
बेइन्साफी के खिलाफ ये
बाह उठा कर लडवाते है—
ऐसे पीछे पडे हुए है मेरे सपने !
मुझे घेर कर खडे हुए है मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सास नही लेने देते है—
दामन पकडे अडे हुए है मेरे सपने।

एक विराट् पवित्रता

ठहरी रहो,
अपनी इन मृणाली बाहो से मुझे घेर कर इसी तरह
ठहरी रहो।
जब तक कि तुम्हारे रोम-रोम से वह अज्ञात सत्य सांसे
ले रहा है
जब तक तुम्हारी आखो मे उसकी नीली गहराइयां हैं
तुम्हारे गाल उसकी रोशनी से रौशन है
तुम्हारे होठो पर उसका स्वाद है
तब तक मुझे घेरे रहो
उस विराट् पवित्रता से मुझे छुए रहो
क्योकि कुछ ही क्षण बाद
अपने आप तुम्हारा आलिगन ढीला पड जाएगा
और हम दो टकराकर कौंध चुके बादलो की तरह
अपने-अपने घायल अस्तित्व को देख रहे होगे
और सोच रहे होगे
कि क्यो अब हमारी निकटता बिजली नही चमकाती
और तब
तुम्हारे चेहरे पर उभरती हुई मुस्कान मे मुझे बनावट
नजर आएगी
और मेरे लहजे से निकलती हुई अभिमान की गध
तुम्हे असह्य लगने लगेगी।
हम फिर स्वय के छोटे-छोटे घेरो मे घिर कर रह जाएगे

फिर तुम मेरे लिए किये गये अपने त्यागों का हिसाब
करने लगोगी
और मैं तुम्हारे लिए सुनी हुई प्रताड़नाएं गिनने लगूंगा।
तुम मेरे किसी दोस्त की नकल निकालोगी
और मैं तुम्हारी किसी सहेली का मजाक उड़ाऊंगा।
फिर वही लेन-देन
हिसाब-किताब
शिकवा-शिकायत
शायद हमारी क्षुद्र आत्माएं
उस विराट् को अधिक देर तक धारे नहीं रह सकतीं
इसलिए जब तक तुम्हारे स्पर्श में शिरीष के फूल खिले
हुए हैं,
तुम्हारे केशों में रातरानी की खुशबू है,
तुम्हारी सांसों में इंसानियत की गर्मी है,
तब तक ठहरी रहो,
अपनी इन मृणाली बांहों से मुझे इसी तरह घेर कर
ठहरी रहो।

बर्फ पिघलने के बाद भी

कैसे फिराते हो तुम मेरे शरीर पर अपनी अगुलियां प्राण ।
कौनसा जादू भरा है इनमे
कि कस कस जाते हैं
मेरे शरीर के सितार की सारी नसों के तार
थिरक उठता है
मेरी नसों मे शताब्दियों से सोया हुआ कोई आदिम
संगीत
समन्दर की अदम्य लहरों की तरह
मन्त्रमुग्ध सा तुम्हारी अगुलियो के इशारों पर
और जाग-जाग उठती हैं
मेरे लहू की अथाह गहराइयों मे बेहोश
प्रागैतिहासिक युग की हजारों कविताएं ।

कौन सा दर्द, कौनसी आग भरी है तुम्हारी इन
अगुलियों मे प्राण ।
जो सैकड़ों रेगिस्तानों की व्याकुल प्यास
मेरे रोम-रोम मे रख जाती है
कि जब मेरे अस्तित्व की नदी ऊपर आए
चरम सुख के तरल वसुधा क्षणों मे घुलने लगती हैं
और मैं तुम्हारी बाहों की अभय देती हुई शाखाओं मे
अपनी गरदन झुकाए हुए
एक अलसाई हुई लता की तरह सो जाती हूं

तब भी मुझे लगता है
कि अनलांघी घाटियों और पहाड़ों की क्वारी बर्फ
पर पड़े

पहले पद-चिन्हों की तरह
सदियों तक मौन सहती रहूंगी अपने वक्ष पर
सजो कर रक्खू गी
तुम्हारी अंगुलियों से लिखे इन घावों को
बर्फ के पिघल जाने के बाद भी।

सवेदनाओ के क्षितिज

तुम ठीक कहती हो प्राण।
सचमुच मैं तुम्हे पूरे दिन से प्यार नही करता
पर मैं पूरा दिल कहा से लाऊ ?
मैं तुम्ह कैसे बताऊ
कि जब मेरे दिल का एक हिस्सा
तुम्हारे प्यार मे खोया हुआ होता है
उसका दूसरा हिस्सा
एक शत्रु तापूर्ण तूफानी समुद्र में
अपनी मजिल की ओर बढ़ते जा रहे
एक छोटे से जहाज के साथ मडरा रहा होता है
और वह जहाज है
साम्राज्यवाद के समुद्र में नही डूबने का सकल्प लिए
हुए क्यूबा।

और जब मैं तुम्हे अपनी गोद में लिटाये हुए
तुम्हारे केशो मे अपनी अगुलियां फिरा रहा होता हूं
मेरे विचार हाथो मे बन्दूक लिए
वियतनाम के घने जगलो मे घूम रहे होते हैं
और अमेरिकी हवाई जहाजो से बरसाये जा रहे
जहर से बमो की किरचे
मेरे चेहरे को लहू लुहान कर जाती है।
मैं तुम्ह पूरे दिल से प्यार कैसे करू ?

कि जब मेरे कंधे पर सिर रख कर तुम सो रही होती हो
और कहती हो
कि इस तरह तुम्हारे कंधे पर सिर रख कर सोना मुझे
इतना अच्छा लगता है
कि चाहती हूं कि जन्म जन्मांतर तक इसी तरह पड़ी रहूं
तभी मेरी आंखों में सुदूर अतीत का एक दृश्य कौंध
जाता है
हावर्ड फास्ट के उस आदि-विद्रोही स्पार्टकस का दृश्य
और छह हजार गुलामों की लाशें मेरे दिमाग में बिछ
जाती हैं
और तुम्हारे मांसल गालों को छूती हुई मेरी अंगुलियों में
राइफल के बोल्ट का एक कठोर स्पर्श जागने लगता है।

तुम ठीक कहती हो
सचमुच में तुम्हे कभी पूरे दिल से प्यार नहीं कर पाता
लेकिन प्यार ही क्या
कोई खुशी, कोई गम भी तो मैं पूरे दिल से नहीं मना
पाता
मेरी हर खुशी पर सैंकड़ों अवसादों के साये हैं
और मेरे हर अवसाद की कारा में सैंकड़ों आशाओं की
खिड़कियां

कि जिस दिन मैं 'राहुल' के प्रकाशन की खुशी मना
रहा था
साम्राज्यवाद का जूआ तोड़ फेंकने वाले दो पड़ौसी देशों
की सेनाएं
हिमालय की बर्फ को इन्सानी खून से रंग रही थी।

कि अपनी नौकरी छूटने की खबर की उदासी
मैंने नाजिम हिकमत की कविता 'तुम्हारे हाथ और यह
झूठ' से काटी थी
और कई महीनो की बेकारी और भटकन के बाद
जब मुझे फिर काम मिला
अल्जीरिया के स्वतन्त्रता आंदोलन को
सीक्रेट आर्मी ऑरगेनाइजेशन की हत्याए आतंकित कर
रही थी।

और उस दिवाली की रात तुम्हे याद है ना ?
जब हम मोमबत्तियो की कतारो मे खिले हुए बच्चो की
तरह खुश हा-हा कर
फुलझडिया और पटाखे छोड रहे थे
मैं एकाएक उदास हो उठा था।
क्योकि एक पटाखे की आवाज मुझे उन गोलियो की
आवाज के करीब ले गयी
जिनसे बगदाद की सड़को पर मेरे अरमानो के सीने दागे
गये थे।

तुम ठीक कहती हो कि मैं
लेकिन मैं क्या करू ?
मेरे ज्ञान ने मेरी सवेदनाओ के क्षितिज कितने फैला
दिये है
कि दुनिया के कोने-कोने मे मैं अपने दोस्तो और दुश्मनो
को देख रहा हू
मेरे दोस्त जो मेरे दुश्मनो से एक निर्णायक लड़ाई मे जूझ
रहे हैं

और पेरिस के किसी चौराहे पर फहरता हुआ मजलूमों
का एक बुलन्द इरादा
जंजीबार मे उठी हुई मुट्ठियो का एक जुलूस
न्यूयार्क मे रंगभेद के खिलाफ कड़कता हुआ
एक नारा
मुझे इस तरह रोमांचित कर जाता है
जिस तरह महीनो की जुदाई के बाद तुम्हारा पहला
आलिंगन।

और टोकियो मे एक मजबूरन टूटी हुई हड़ताल
लियोपोल्डविल में एक गिरफ्तारी
सिंगापुर मे झुकी हुई गर्दनो का एक वापस लिया
हुआ आंदोलन
मेरे दिल पर अवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घंटो तक किसी से बात भी नही कर पाता।

इसका मैं क्या करूं ?

प्रकृति मे प्रतिबिम्बित किसी परोक्ष सत्ता मे मेरा विश्वास
नही
पर मेरे भीतर बसा हुआ यह प्रकृति का अश
इसका मैं क्या करू ?

हिलोर लेने लगता है मेरे भीतर का पानी
समन्दर की अदम्य लहरो के कोलाहल मे
उमड़-उमड़ उठती है मेरे रक्त मे बसी हुई आग
कुहरीले सवेरो मे पूरब से निकलते हुए सूरज के
साथ-साथ।
और जब भी देखता हू
चादनी रातो मे नदी के चमकते हुए कछार
लोट-पोट हो जाना चाहती है उनमे
मेरे भीतर की पृथ्वी।
उमग-उमग आता है मेरे अन्तस् का आकाश
सितम्बर की शामो के रग-बिरगे बादल चित्रो मे
विचरते हुए।
जाग उठती है मेरे भीतर सोयी हुई खुशबूए
वासन्ती हवाओ की मादक सुगधा के सगीत मे।
और जब देखता हूँ
लोगो के एक समूह को एक साथ आन्दोलित होते हुए
एक कतार मे कवायद करते हुए

एक लय मे कुदालें चलाते हुए
और एक स्वर मे भुजाए उठाते हुए
तो मचल मचल उठता है मेरा दिल
उनमे घुल-मिल जाने के लिए
जैसे बहुत देर से बिछुड़ा हुआ कोई बच्चा
अपनी मां को देख कर
उसकी गोद मे जाने को तड़पता है।

इस ससार मे अभिव्यक्त किसी अज्ञात चेतना मे मेरा
विश्वास नही
पर इस ससार के [illegible] अंग के साथ
मै जो कोई गहरी आत्मीयता [illegible] महसूस करता हू
उसका मै क्या करू ?
मेरे भीतर जो इस आग और इस तरलता का
अपनी आखो के आकार और अपने हृदय की मनुष्यता
का
इनका मै क्या करू ?

इतिहास का दर्द

काश, यह दुनिया कुछ कम उलझन-भरी होती।
प्यार का विरोध सिर्फ गलत परम्पराएं ही करती या
पैसा ही
सच की दुश्मनी सिर्फ झूठ से ही होती
उजाले के हथियारों से हथियार भिड़ाए हुए
सिर्फ अंधेरा ही खड़ा होता
और इंक़लाब की खिलाफ़त सिर्फ प्रतिक्रिया ही करती।

लेकिन यहां तो प्यार के खिलाफ प्यार खड़ा है
एक तरह के प्यार के खिलाफ दूसरी तरह का प्यार
और परम्परा और पैसा उसके पक्ष में भी हैं और विपक्ष
में भी।
उजाले के सामने उजाला तना हुआ है
गुलाबी उजाले के सामने लाल उजाला
और काले अंधेरे का विरोध नीला अंधेरा कर रहा है।
सच के खिलाफ सिर्फ झूठ ही नहीं
एक दूसरा सच भी है
और इन्कलाब के मुकाबले में सिर्फ प्रतिक्रिया ही नहीं
एक दूसरी तरह का इन्कलाब भी खड़ा है।

काश यह दुनिया कुछ कम जटिल होती
और हमें एक इन्कलाब के लिए दूसरे इन्कलाब की

एक प्यार के लिए दूसरे प्यार की
और एक सच के लिए दूसरे सच की
मुख़ालिफ़त के दर्दनाक कर्त्तव्य का बोझ
न उठाना पड़ता।

प्रतिश्रुति का गीत

मैं आज के युग मे जो रहा हू
और आज की
—एकदम आज की—सक्रांति झेल रहा हू
पर मैं असगतियो और विद्रूपताओ के
विक्षेप और आत्महनन के गीत कैसे गाऊ ?
जब कि मेरे आसपास सब कुछ अन्धेरा ही नही है

तमाम दूरिया क बावजूद मेरे माता पिता
अभी मेरे लिये बेगाने नही हुए हैं
अपने घर मे मैं अभी आउटसाइडर नही हुआ हूँ
मेरी पत्नी अभी मेरे लिये अजनबी नही बनी है
मेरे दोस्त अभी मेरी भाषा समझते है ।

यह नही कि मुझ कभी अकेलापन नही सताता
पर अधिकतर मैं जब भी चाहता हू
अपने अकेलेपन का
अपने साथियो के क धो पर टाक सकता हू
झोले मे पडी एक पुस्तक की तरह
अपनी प्रिया की आखो मे विलीन सकता हू
स्वच्छ सरोवर मे डुबकिया लगाते हुए ।
एक जलपक्षी की तरह

अपने विद्यार्थियों के चेहरों पर छिड़क सकता हूँ
गर्मी की किसी दोपहर में
खस से सुगंधित ठण्डे पानी की तरह
और अपनी किताबों के पन्नों पर बिखेर सकता हूँ
गुलाब की ताजा पंखुरियों की तरह
या नीले अम्बर के आकाश में उड़ा सकता हूँ उसे
एक नन्हे से सफेद कबूतर की तरह।
और जब यह कुछ भी सम्भव न हो
तो किसी भी जाते हुए राहगीर के पल्ले में बांध
सकता हूँ
रोटी और आचार की एक छोटी सी पोटली की
तरह।

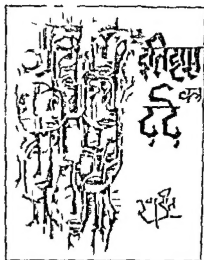
लोग मुझे सिली हुई दियासलाइयों से अस्पृश्य कैसे लगें ?
जब कि मैं उन्हें देखता हूँ
लोगों के लिये लड़ते हुए
बिना टूटे जेलों में सड़ते हुए।
दुनिया मुझे सिफलिस से बजबजाई हुई
मवाद चुआती हुई
मुट्ठियों में अपनी मौत की विरासत बांध कर जाती हुई
कैसे दिखाई दे ?
और क्यों लगें फुंसियों की तरह आकाश के तारे
जब कि फुंसियों और बीमार मनों—
दोनों के ही लिये अस्पताल मौजूद हैं।

मैं विक्षुब्ध के विरूप और मृत्यु के सन्त्रास की कविताएं कैसे
लिखूं ?

जब कि सब-बातो के बावजूद
मेरा देश अभी अमेरिका नही हुआ है
मेरी धरती अभी चमगादडो की दुर्गंधित गुफाओ
और बारूद के जहरीले धु ए से घुटे खडहरो मे नही बदली
है
और न आकाश में मकडियो ने ही अपने जाल बनाये हैं।
मेरी सभी हवाओ म अभी जहर नही घुला है
और न मेरी नदियां
बिलबिलाते हुए कीडो से भरी नाबदानो में ही बदली है।
पागलखाने और चकले अभी मेरे नगरा म ही है,
मेरे नगर अभी पागलखाना और चकलो मे नही गये है
लोग भूखा तो मरते है
पर अभी श्मशान म ही लेजाकर जलाये जाते है
श्मशान अभी घरो मे नही उतरे है।
मनुष्यो और मनुष्यो के बीच अभी बहुत कुछ शेष है
फूल अभी खिलते है
पक्षी अभी चहचहाते है
मेरे आसपास अभी बहुत सा उजाला है।

यह नही कि मैं अपने परिवेश की असगतियो के प्रति
अधा हू
या कि मै उसकी विरूपताओ का देखना नही चाहता
नही, मै उन्हे देखता हू
पर मैं सिर्फ उन्हे ही नही देखता
और न उनके गौरव-गायन मे ही अपनी कविताओ को
लगाना चाहता हू
मै उन विरूपताओ की नपटो के बीच

प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौन्दर्य को भी देखता
हू ।
और उस सगति को भी
जो इन असगतियो की काई फाड कर झाक जाती है ।
मैं अपने चारो ओर फैली हुई सक्राति से नही,
उसके बीच से अपने नक्श उभारती हुई क्राति से
प्रतिश्रुत हू ।
अस्तित्व की बहुदगियो के रेगिस्तान का नही
उसके नीचे बहती हुई सार्थकता की उस अन्त सलिला का
कवि हू
जो पाताल-तोड कुए के रूप मे फूट पडना चाहती है ।
मैं उसकी मुक्ति के लिये सकल्पित हू ।



रणजीत की चुनी हुई पचास कविताएं

"रणजीत जी एक क्रुद्ध नौजवान हैं लेकिन बीटनिक या ऐंग्री जनरेशन के नौजवानों की तरह नहीं। कुण्ठा और क्रोध में उनका मन इतिहास चेतना खोकर निराशा और अनास्था के सागर में डुबकियां नहीं लगाता। वे उस श्रेणी के क्रुद्ध नौजवान हैं जिस श्रेणी के क्रुद्ध नौजवान हर युग और पीढ़ी के प्रगतिशील कवि, कलाकार और चिन्तक रहे हैं—यानी जिनका तरुण ईमानदार मन वर्ग समाज की विषमताओं, उसके शोषण, अन्याय और झूठ के प्रति सहनशील न होकर विद्रोही रहा है और जो अपने क्रोध और विद्रोह के सामाजिक प्रयोजन के प्रति भी सचेत रहे हैं।

रणजीत एक अनुभूति प्रवण कवि हैं। उनकी अनुभूतियां मात्र वैयक्तिक नहीं, बल्कि एक माने में देश और विदेश के हर पीड़ित व्यक्ति और आक्रान्त व्यक्ति के साथ वे अपनापा महसूस करते हैं और उसके साथ वे स्वयं भी पीड़ा भोगते हैं। यह उनके सच्चे मानवतावाद का प्रमाण है। टोकियो में मजबूरन लूटी हुई एक इण्डोनेशियन और लियोपोल्डविल में एक गिरफ्तारी के प्रति उनका हृदय उतना ही संवेदनशील है, जितना एक हिन्दुस्तानी लड़की की मजबूरियों के प्रति। हर अन्याय को देखकर उनके मन में आदि विद्रोही स्पार्टकस की याद ताजा हो जाती है और छह हजार गुलामों की भी। उनके दिमाग में छिड़ जाती है। प्रगतिशील काव्यधारा में रणजीत ने जो तरुण और सशक्त हस्ताक्षर जोड़ा है वह अभिनन्दनीय है।"

—शिवदानसिंह चौहान